प्रियवर रतनलाल जी 'शांत'
को सस्नेह

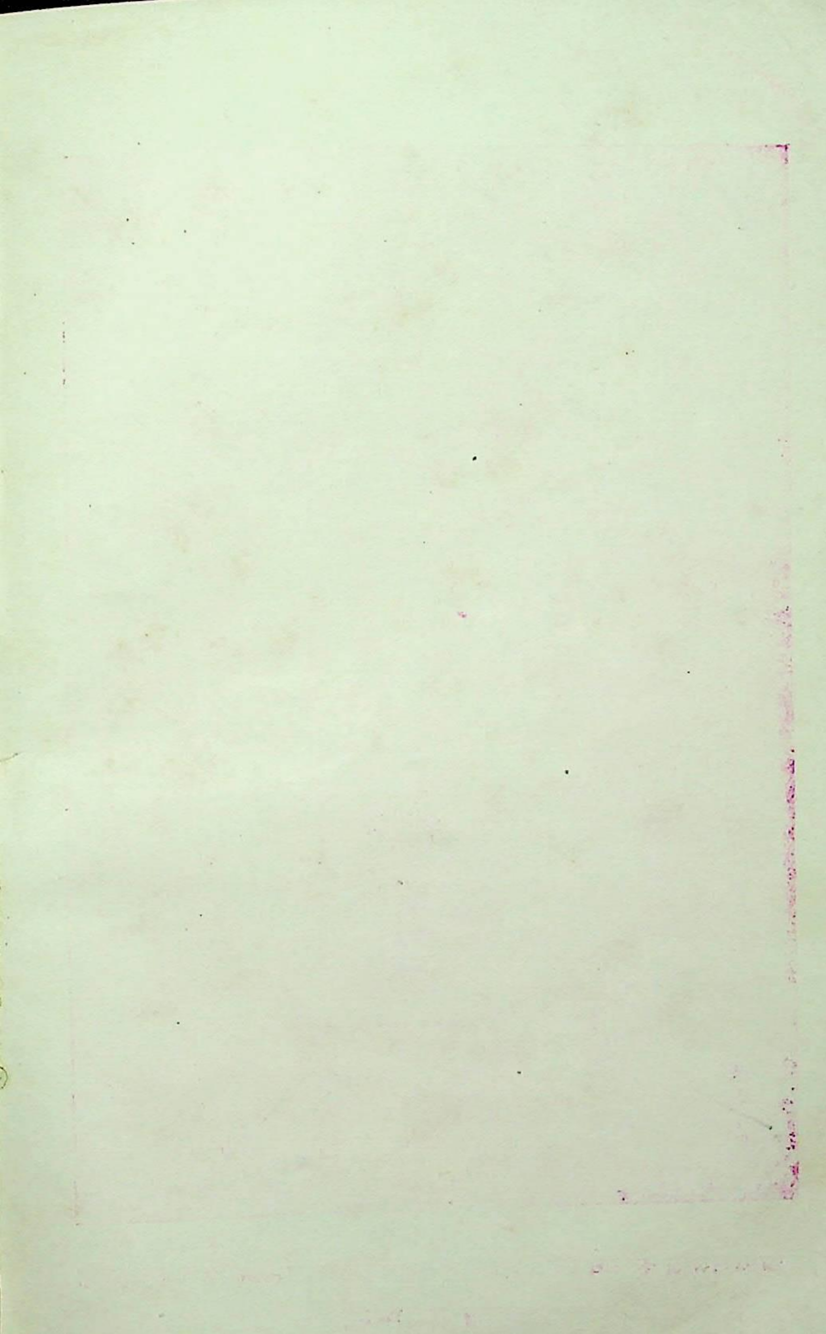
[illegible signature]
१५.७.५६.

नारवन

अमरनाथ सप्रू

विषय सूची

संख्या	नाम अध्याय	पृष्ट संख्या से		तक
१	कुछ प्रारम्भिक,	५	,,	८
२	ब्रह्मचर्य क्यां है, उसकी महिमा, लाभ और साधन	६	,,	११
३	महापुरुषों की अनुभूतियाँ	११	,,	१३
४	गांधी प्रवचन	१४	,,	१६
५	हमारे गृह्यसूत्रकार लौगाक्षि मुनि के सूत्र	१७	,,	१८
६	कलश पूजा में ब्रह्मचर्य गान	१८	,,	२४
७	नारवन	२४	,,	३८
८	उपनयन में नारवन	३८	,,	४५
६	काश्मीरी विवाह पद्धति में ब्रह्मचर्य विधान	४६	,,	६८
१०	महामहोपाध्याय श्री पं० लक्ष्मी धर कल्ला जी के ब्रह्मचर्य संन्देश	६६	,,	७१





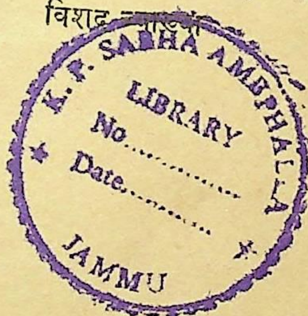
आर्यसमाज के प्रवर्तक, ब्रह्मचर्य तथा वैदिक संस्कृति के पुनरुद्धारक
ऋषि दयानन्द

नारवन

अर्थात्

ब्रह्मचर्य व्रत प्रतिज्ञा

काश्मीरी पण्डितों की अति प्रसिद्ध तथा व्यापक रसम
नारवन पर पढ़े जाने वाले वेद-मन्त्र की
विशद व्याख्या



१००० प्रति

मूल्य
यथाशक्ति गुरुकुल को दान

गुरुकुल मुद्रणालय

संकलनकर्ता— गुरुकुल निवासी अमरनाथ सप्रू

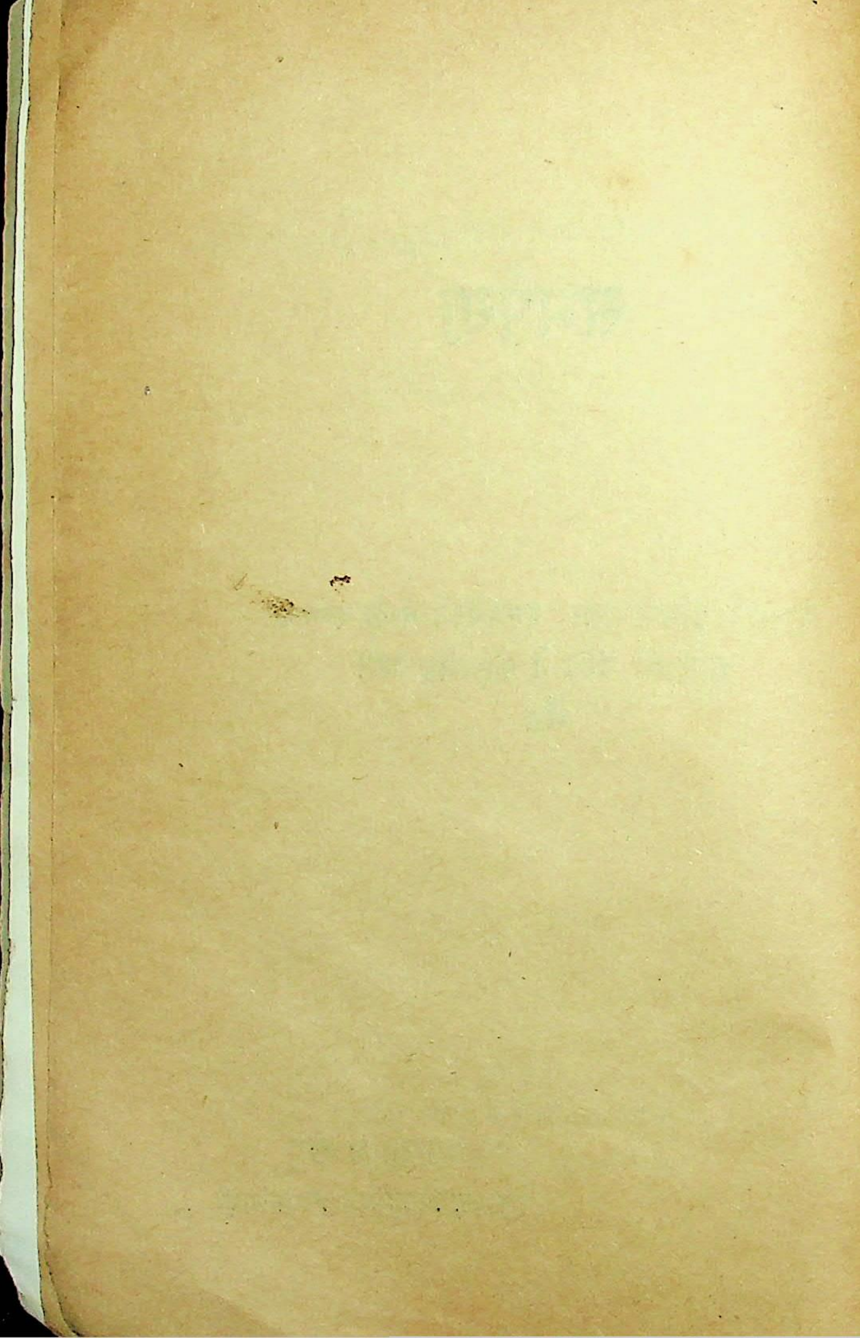


प्रकाशक
मन्त्री स्वर्ण जयन्ती कार्यालय
गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी
हरिद्वार

समर्पण

नारवन बांधने तथा बन्धवाने वाले सकल
काश्मीरी पंडितों को स्नेह भरी
भेंट

अमरनाथ सप्रू
गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी



दो शब्द

नारवन मैंने पढ़ी, श्री पं० अमरनाथ जी सप्रू ने खूब प्रयत्न किया है। आपने गुरुकुल के ऊँचे आदर्शों को अपना कर अपना सम्पूर्ण जीवन ही इन आदर्शों के प्रचार और समर्थन के लिये समर्पित किया है। "स्वर्ण-जयन्ती" के शुभ उपलक्ष्य में जो तीस लाख रुपये इकट्ठे करने की योजना है उसमें सहयोग देना आर्य (भारतीय) संस्कृति के प्रत्येक समर्थक का सांस्कृतिक कर्त्तव्य है। श्री सप्रू जी ने भी अपनी काश्मीरी पंडित बिरादरी की सेवा में 'नारवन'—रूपी पत्र पुष्प चढ़ाये हैं और गुरुकुल के सांस्कृतिक यज्ञ में आहुति डालने के लिये उन्हें निमन्त्रित किया है।

मुझे आशा है कि काश्मीरी पण्डित भाई और बहिनें सप्रू जी की प्रिय भेंट को अपना कर नारवन बांधना और बंधवाना सीखलेंगे और गुरुकुल जयन्ती के शुभ यज्ञ में समुचित भाग लेंगे। दो शब्द लिखकर भेज रहा हूं काम आयें तो मेरा अहो भाग्य।

पण्डित पृथ्वीनाथ पुष्प

शास्त्री एम. ए. एम. ओ. एल.

उपाध्याय गांधी मेमोरियल कॉलेज,

जम्मू (तवीं)।

* ओ३म् *

मुझे हर्ष है कि श्री पण्डित अमरनाथ जी सप्रू ने यजुर्वेद अध्याय ३४। ५१ को मनन कर मंत्र की आत्मा में प्रवेश पा लिया है। वर्णित ब्रह्मचर्य व्रत प्रतिज्ञा को अपनी गद्य और पद्य रचना में सुन्दर ढग से रखने का शुभ प्रयास किया है। सज्जन वृन्द पढ़ कर लाभ उठावें।

प्रियव्रत

वेदवाचस्पति

आचार्य—

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी



कुछ प्रारम्भिक

बहिनो और भाइयो !

सादर नमस्कार ।

मैं अपने जीवन का सौभाग्य मानता हूँ कि मैंने गुरुकुल में निवास और सेवा करते उसकी रजत-जयन्ती देखी और अब स्वर्ण-जयन्ती महोत्सव देखने का भी शुभ अवसर मिल रहा है। इस विश्वविद्यालय ने गत अर्द्ध-शताब्दी में जो देश सेवायें की वह सर्वविदित हैं। अब आगामी जीवन और कार्य-क्रम के लिए उसको धन की बड़ी राशि की आवश्यकता है जिसके लिये गुरुकुल के सभी पुराने और नए कर्मचारी स्वर्ण-जयन्ती यज्ञ की सामग्री जुटाने में प्रयत्नशील हैं। मुझे भी गुरुकुल विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर (कुलपति) जी ने आदेश किया है कि मैं भी अन्यों की भांति अपने बन्धुवर्ग से गुरुकुल स्वर्ण-जयन्ती के लिए धन-भिक्षा मांग लाऊं। आज्ञा तो मैंने शिरोधार्य करली, परन्तु सोचने लगा कि भाइयों के द्वार पर रिक्त हाथ किस मुंह से जाऊं ? इतने विशाल, प्रसिद्ध, विख्यात शारदा मन्दिर का तुच्छ परन्तु पुराना सेवक मन्दिर से कुछ प्रसाद न ले जाय, खाली हाथ ही जाय, यह दुःसाहस मैं न कर सकूंगा। प्रसाद का स्वरूप क्या हो; इसी चिन्ता में विश्वविद्यालय

की आदर्श सूक्तिः—

"ब्रह्मचर्य्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

"ब्रह्मचर्य्य रूपी तप से देवताओं ने मृत्यु पर विजय पाई" पर ध्यान गया, कुछ ढारस बन्धा, अधिक विचार किया सो गद्गद हो उठा। ओह !! "ब्रह्मचर्य्य-सन्देश"—यह तो हमारे पूर्वज काश्मीरी ब्राह्मण अपनी सन्तति हितार्थ हजारों वर्ष पहले ही दे चुके हैं। दूरदर्शी महात्माओं ने इसे केवल सन्देश तक ही परिमित न रखा अपितु इसको ऐसा व्यापकरूप दे दिया कि प्रत्येक नर-नारी बालक बालिका के सदा सन्मुख रहे, कभी विस्मरण हो ही न सके। उठते-बैठते, जागते-सोते नित्य-नैमित्तिक, पूजा-पाठ; होम-यज्ञ, तीज-त्योहार में ज्वलन्त रूप से स्मरण रहे।

नारवन-जिसको हम जीवन में सैंकड़ों बार सैंकड़ों का व्यय कर बांधते रहते हैं, क्या है ? ब्रह्मचर्यव्रत की प्रतिज्ञा ही तो है। पुनः पुनः बांधने का अभिप्राय यही है कि व्यक्ति विशेष अपने प्रतिज्ञा-पत्र का नवीन संस्करण कर अपने मन और बुद्धि को संस्कृत किया करे। मन्त्रार्थ अनुसार नारवन बन्धन व्यक्ति को स्वयं बान्धना चाहिये, पर आज होता यह है कि पुरोहित जी लाल रंग का तागा पुरुष के दांये और स्त्री के बायें हाथ में बांध, कुछ पढ़, टीका लगा देते हैं। यजमान हाथ जोड़ गुरु जी को नमस्कार कर कृतकार्य हो जाता है और बस ! तत्व यह है कि हमने अज्ञान वश तत्ववेत्ता पूर्वजों से निर्दिष्ट

इस उत्कृष्ट पावन व्रत को ऐसा मृत रुढि सा बना रखा है कि वह अन्यथा सिद्ध सा बन गया, और हम उसके लाभ से वञ्चित हैं।

पूछने पर बताया जाता है कि **नारबन** बांधने से आयु बढ़ती है। बढ़ तो सकती है, निःसन्देह पर यदि कोई विधि-पूर्वक बांधना सीखे भी। बेगार काटने से भला किसी को सिद्धि मिल सकी है आज तक कहीं ? मन्त्र में वेद भगवान् स्वयं आयु वृद्धि लाभ को सम्पुष्ट करते हैं।

इस प्रकार की विचार धारा पर चित्त ने साक्षी दी कि गुरुकुल शारदा मन्दिर से यही और केवल यही प्रसाद काश्मीरी बहिन-भाइयों के पास ले जाना उपयुक्त और श्रेयस्कर रहेगा।

निश्चय कर लिखने बैठा। निबन्ध लगभग ८० पृष्ठ का हो गया। मूल **नारबन** मन्त्र है—उसका भावार्थ तथा गद्य-पद्यानुवाद के साथ-साथ केवल काश्मीरी संस्कार पद्धति में दिये यज्ञोपवीत और विवाह पर पढ़े जाने वाले कुछ मन्त्र, गृह्य-सूत्र जिन में वीर्य रक्षा की महिमा तथा उस के साधनों पर प्रकाश मिला, हिन्दी अनुवाद सहित यथास्थान साथ जोड़ दिये हैं।

अन्त में मैं बहिन-भाइयों से सविनय बता देना चाहता हूं कि मैंने **नारबन** पुस्तक में जो कुछ लिखा है उस में उपदेष्टा बनने की रंच मात्र भी चेष्टा नहीं, यह धृष्टता कभी न

होगी । मैं तो आजीवन दफ्तरी लेखक का ही कार्य किया है। काश्मीरी संस्कार पद्धति में जो पढ़ा उसकी नक़ल कर दी है और अनुवाद भी साथ जोड़ दिया है। हां यथा स्थान कहीं कहीं उचित प्रमाणों से अपने भावों को स्पष्ट और सम्पुष्ट करने का प्रयत्न किया है। यदि इसका कुछ मूल्य समझें तो गुरुकुल शारदा मन्दिर को यथाशक्ति भेंट भेज ना। वन प्रसाद प्राप्त करें।

सप्रू निवास
गरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी
३० कार्तिक सम्वत् २००६

आपका विनीत भाई
अमरनाथ सप्रू

ब्रह्मचर्य क्या है ?

उसकी महिमा, लाभ और साधन

यदि कोई आर्यजाति के वैभवशाली उज्ज्वल इतिहास को एक शब्द में लिखना चाहे तो वह निःसंकोच लिख सकता है 'ब्रह्मचर्य'।

वेदों से लेकर उपनिषद्, गीता और तत्पश्चात् सब धर्म-ग्रन्थों में इसके विस्तृत व्याख्यान ऐसे विद्यमान हैं जैसे विश्व में वायु। वेदों में केवल मनुष्यों का ही ब्रह्मचर्य नहीं कहा पशु-पक्षी अपितु वनस्पति जगत् के ब्रह्मचर्य सम्बन्धी निर्देश और विधान मिलते हैं। ऋग्वेद में कहा है कि ब्रह्म ने मनुष्यों को उपासना करने पर ब्रह्मचर्य और सामर्थ्य प्रदान किया।

वेदोक्त जीवन ऐसा ब्रह्मचर्यमय है कि चार आश्रमों में से तीन में अखण्ड ब्रह्मचर्य ही है। केवल गृहस्थाश्रम में सन्तानोत्पत्ति का विधान है और वह भी संयतरूप से।

"ब्रह्म की चर्या का नाम है ब्रह्मचर्य" ब्रह्मचर्य के 'ब्रह्म' शब्द से घबराने की जरूरत नहीं। 'ब्रह्म' का अर्थ निस्सन्देह परमेश्वर है, भगवान् है। इसे चाहे सत्य कहो, ज्ञान कहो, वेद कहो, बृहत् संसार कहो। कोई भी बृहत् श्लाघ्य वस्तु' ब्रह्म है।

तो ब्रह्म का सामान्य अर्थ हुआ "बृहत् (महान्) लक्ष्य", 'बृहत् (महान्) आदर्श'। कोई न कोई बृहत् आदर्श ही मनुष्य को ब्रह्मचारी बनाता है। किसी ब्रह्म आदर्श महान् के लिए ही मनुष्य आत्मसंयम करता है, ब्रह्मचारी बनता है। ब्रह्मचारी होने का मतलब ही यह है कि वह अपने ब्रह्म का ही अनुसरण करेगा। यह उसकी व्रतपालन की ही घोर तपस्या है जिसके कारण उसके अन्दर के देव जाग उठते हैं और उसके अनुसार बाहर के जगद्व्यापी देव उसकी अनुकूलता में खड़े हो जाते हैं और इस प्रकार यह सब ब्रह्माण्ड उसके लिये हस्तगत हो जाता है। उसकी यह तपस्या ही उसका सर्वस्व होता है। क्योंकि ब्रह्मचर्य बाधक कामचेष्टा ही सर्वाधिक बलवती है इसलिए इसीका निरोध करने अर्थ में 'ब्रह्मचर्य' शब्द रूढ़ हो गया है। ब्रह्मचर्य अर्थात् ब्रह्म की-सत्य की-शोध में चर्या, अर्थात् तत्सम्बन्धी आचार। इस मूल अर्थ से सर्वेन्द्रिय-संयम का विशेष अर्थ निकलता है। केवल जननेन्द्रिय संयम के अधूरे अर्थ को तो हमें भूल ही जाना चाहिये।

यहाँ ब्रह्मचर्यमहिमा विषयक कुछ सूक्तियां इस विषय को अधिक स्पष्ट कर सकेंगी।

"तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म, ता आपः स प्रजापतिः।"

(यजुर्वेद)

अर्थात्— वही वीर्य है, वही ईश्वर है, वही जीवन है, और वही सृष्टिकर्त्ता भी है।

"तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म, तदेवामृतमश्नुते।"

(कठोपनिषत्)

अर्थात्—वही वीर्य है, वही परमात्मा है, और वही अमृत कहलाता है।

"एकतश्चतुरो वेदान् ब्रह्मचर्यं तथैकतः।"

(छान्दोग्योपनिषत्)

एक ओर तो चारों वेदों के उपदेश, और दूसरी ओर ब्रह्मचर्य-दोनों एक तुला पर रख कर तोले जायँ, तो दोनों पलड़े बराबर होंगे।

महापुरुषों की अनुभूतियां

भारत ब्रह्मचर्य का उद्भव स्थान है। हनुमान, भारद्वाज और भीष्म पितामह आदर्श ब्रह्मचारियों के जन्म का श्रेय भी इसी पुण्य भूमि को है। हिन्दूपुस्तकों में भगवान् शंकर, परशुराम, शुक्र, दत्तात्रेय, महर्षि शुकदेव, सनक-सनन्दन-चार ऋषि, वासुदेव और ऋषभदेव के नामों के साथ आचार्य पदवी लगी मिलती है। इन सब की जीवनियां भारत इतिहास का मुख उज्ज्वल करने में समर्थ हैं। यहां सर्वप्रथम राजऋषि देवव्रत की (जिसने आजन्म अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत से भीष्म-पितामह का नाम पाया) अनुभूतियों को लिख देना उचित ही होगा।

हे अजातशत्रु !

मैं ब्रह्मचर्य का गुण (प्रताप) बतलाता हूँ, तुम स्थिर-बुद्धि से सुनो ? जो मनुष्य जन्मभर ब्रह्मचारी रहता है, उसे इस संसार में कुछ भी दुःख नहीं होता।

इस संसार में उत्पन्न होने से, मरण तक जो ब्रह्मचारी रहता है। उसके लिए कोई उत्तम बात ऐसी नहीं है जिसको वह प्राप्त न कर सके। वह कभी दीन मलीन हीन नहीं हो सकता। (महाभारत)

मन वचन और शरीर से सब अवस्थाओं में सदा और सर्वत्र मैथुन त्याग को ब्रह्मचर्य कहते हैं।

(महर्षि याज्ञवल्क्य)

बिन्दु ही जीवन है-जीवा ! जीवात्मा की रक्षा के लिये इसे धारण करो। शंकर महादेव का त्रिनेत्र भी यही है जिससे बली काम को भस्म किया था। —भगवान भूतनाथ

जो मनुष्य ब्रह्मचर्य पूर्वक जीवन व्यतीत करता है वही भिक्षु है। भगवान बुद्ध (धम्मपद २६७)

वीर्य रक्षा ही संसार की समस्त शक्तियों की जन्मदात्री है इस अमोघ प्रयोग की प्रकाण्ड प्रणाली को संजीवनीविद्या कहते हैं और यह अमृतमयी विद्या निश्चय ही मृतकों को जिला देती है। —महर्षि शुक्र

वीर्य ही वस्तुतः संजीवनी बूटी, सच्चा बाजीकरण, आयु, स्वास्थ्य, बल और तेज बर्धक औषध है। संसार के इतिहास में किसी भी व्यक्ति अथवा जाति के अभ्युदय काल के पीछे इसी का जादूभरा हाथ दृष्टिगोचर होता है।

संजीवनी बूटी

बूटी यह संजीवनी, सुखद सुधारस खान,
एक घूंट के पान से, दे नवजीवन दान।
दे नवजीवन दान, तेज है मुख पर लाती;
काया के सब रोग, जल्द है दूर भगाती।
कहे 'देव' है गांठ, हृदय की उसकी टूटी;
रहे सदा आनन्द, पिये जो मेरी बूटी।

(देव)



गान्धी प्रवचन

यदि दैवी साधन से शरीर तैयार करना हो तो ब्रह्मचर्य ही उसका एक उपाय है। जब मुझे कोई नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहता है तब मुझे अपने पर दया आती है। ऐसा कहने वालों को पता नहीं कि नैष्ठिक ब्रह्मचर्य किस चीज़ का नाम है? और जिसके बाल बधे हुए हैं उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कैसे कह सकते हैं? नैष्ठिक ब्रह्मचारी को न तो कभी बुखार आता है और न कभी सिर दर्द करता है न कभी खांसी होती है और न कभी अपेन्डेसाइटिस होता है। मैं चाहता हूं कि मुझ पर नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन करने का आरोपण करके कोई मिथ्याचारी न हो। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का तेज तो मुझ से कई गुणा अधिक होना चाहिये। मैं आदर्श ब्रह्मचारी नहीं। हां यह सच है कि मैं वैसा बनना चाहता हूं। मैंने तो आपके सामने अपने अनुभव की कुछ बून्दे पेश की हैं, जो ब्रह्मचर्य की सीमा बताते हैं। ब्रह्मचारी रहने का अर्थ यह नहीं कि मैं किसी स्त्री को स्पर्श न करूँ, अपनी बहन का स्पर्श न करूँ। पर ब्रह्मचारी होने का अर्थ यह है कि स्त्री का स्पर्श करने से किसी प्रकार का विकार न उत्पन्न हो, जिस तरह कि कागज़ को स्पर्श करने से नहीं होता। मेरी बहिन बीमार हो और उसकी सेवा करते हुए ब्रह्मचर्य के कारण मुझे हिचकना पड़े तो वह ब्रह्मचर्य तीन कौड़ी का है। जिस निर्विकार दशा का अनुभव हम मृत शरीर को स्पर्श करके कर सकते हैं उसी का अनुभव जब हम किसी सुन्दरी युवती का स्पर्श करके कर सकें तभी हम ब्रह्मचारी हैं।

देह का दमन (ब्रह्मचर्य) किये बिना आत्मा की पहचान और विकास असम्भव है। देह को प्रतिक्षण आत्मा के वश में लाने का प्रयत्न करना चाहिये। जो मनुष्य विकारों को अपने वश में नहीं रख सकता वह ईश्वर को पहचान ही नहीं सकता। मनुष्य पशु नहीं। उसका जन्म सिर ऊँचा करके चलने को हुआ है। लेटकर या पेट के बल रेंगने को नहीं।

ब्रह्मचर्य का पालन बहुत कठिन, लगभग असम्भव माना गया है। इसके कारण की खोज करने से मालूम होता है कि ब्रह्मचर्य का संकुचित अर्थ किया गया है। जननेन्द्रिय विकार के विरोधमात्र को ही ब्रह्मचर्य मान लिया गया है। मेरी राय में यह अधूरी और ग़लत व्याख्या है। विषयमात्र का विरोध ही ब्रह्मचर्य है। जो और-और इन्द्रियों को जहां तहां भटकने देकर एक ही इन्द्रिय को रोकने का प्रयत्न करता है वह केवल निष्फल प्रयत्न करता है। इसमें संदेह क्या है ? कान से विकार की बातें सुनना, आंख से विकार वाली वस्तुएँ देखना, जीभ से विकारोत्तेजक वस्तु का स्वाद लेना, हाथ से विकारों को उभारने वाली चीज़ को छूना और जननेन्द्रिय को रोकने का इरादा रखना, यह तो आग में हाथ डाल कर जलने से बचने का यत्न करने जैसा है। इसलिये जो जननेन्द्रिय को रोकने का निश्चय करे, उसका सभी इन्द्रियों को अपने २ विकारों से रोकने का निश्चय पहले किया हुआ होना चाहिये। मुझे सदा ऐसा जान पड़ा है कि ब्रह्मचर्य की संकुचित व्याख्या से नुक़सान हुआ है।

ब्रह्मचारी स्वाभाविक सन्यासी होता है। ब्रह्मचर्याश्रम सन्यासाश्रम से भी बढ़कर है; पर उसे हमने गिरा दिया है। इससे हमारा गृहस्थाश्रम भी बिगड़ा है और सन्यास का तो नाम भी नहीं रह गया है। ऐसी हमारी असहाय अवस्था हो गई है।

मेरा तो यह निश्चित मत है और अनुभव है कि यदि हम सब इन्द्रियों को एक साथ वश में करने का अभ्यास करें तो जननेन्द्रिय को वश में करने का प्रयत्न शीघ्र ही सफल हो सकता है। इनमें मुख्य वस्तु स्वादेन्द्रिय है। इसीलिये उसके संयम को हमने पृथक् स्थान दिया है।

एक स्थान पर महात्मा जी लिखते हैं कि ब्रह्मचर्य "ईश्वरीय संदेश" है, यदि संसार में एक व्यक्ति भी इसका पूर्ण रूप से पालन कर सका है तो इसे असम्भव कहना बनता ही नहीं, कठिनतम तो है ही निःसन्देह। भाइयो व्रतच्युत होने पर निराश मत हो, उठो! उठो! फिर उठो! मञ्जिल पर एक दिन पहुंच ही जाओगे। जन्म-जन्मान्तर के कुसंस्कार पर क़ाबू पाना सहज नहीं। इस पुरानी मानवीय निर्बलता को कौन नहीं जानता कि मनुष्य मौजूदा पैसा भर सुख के लिये आगामी के सैंकड़ों को न्यौछावर कर देता है। इसी कुप्रवृत्ति पर विजय पाना ही कैवल्य है।

प्राचीन और अर्वाचीन महापुरुषों की सूक्तियां तथा वचन अनेक हैं परन्तु पुस्तक कलेवर वृद्धि के भय से नहीं दिये गये।

—०—



गुरुवर ऋषि दयानन्द के ब्रह्मचर्य आदेशों को मूर्त रूप देने वाले
गुरुकुल के संस्थापक

श्री स्वामी श्रद्धानन्द



काश्मीरी रिसर्च डिपार्टमेंट में मुद्रित
लौगाक्षि गृह्य-सूत्र में
ब्रह्मचर्य महिमा

सतु खलु चरित ब्रह्मचर्यो दश दश ।
पुरुषान्पुनाति पूर्वापरान् आत्मानं चैक विंशम् ॥

संवत्सर व्रत करने वाला ब्रह्मचर्य व्रतधारी व्यक्ति ही अपने पूर्ववर्ती एवं परवर्ती दस-दस पुरुषों (पीढ़ियों) की पवित्रता का कारण होता है और इक्कीसवां स्वयं आप भी शुद्ध पवित्र बनता है ।

ततः प्रजनं देवा उपजीवन्ति

मनुष्यों से प्रकट होने वाले प्रकष जनन शक्ति वाले वीर्य का ही सब दिव्य गुण आश्रय लेते हैं। अर्थात् वीर्यवान् व्यक्ति ही सद्गुणों को धारण कर सकता है। निर्वीय या निकृष्ट वीर्य व्यक्ति गुणहीन होकर समाज में प्रतिष्ठित नहीं हो सकता है।

सर्वेषां वेदानां चरितब्रह्मचर्यो यदि नान्यत्कुरुते ॥

जो कोई वेदाध्ययन काल में अन्य कोई व्रत न भी करे वह केवलमात्र संवत्सर व्रत करने से ही सब वेदों का ज्ञाता चरित ब्रह्मचर्य सम्पन्न हो जाता है उसी व्रताचरणपूर्वक चारों वेदों का अध्ययन स्वयमेव हो जाता है ।

तपोज्ञानं 'सम्यग्ज्ञानमथं तपः ।

यह जो ब्रह्मचर्यरूप तप और ज्ञान है, यही सम्यक् ज्ञान और सम्यक् तप है।

पृथिव्यादि लोक देवताः वीर्य भूताः ।

यही वीर्य ही पृथिवी आदि लोकों में देवता अर्थात् सर्वविध शक्तियों के दाता, प्रकाशस्वरूप प्रकाशक तथा प्रख्याति प्रदान करने वाले हैं।

स सर्वं विन्दते ज्ञात्वा

वह पूर्ण ब्रह्मचारी सब काम्य फल प्राप्त करता है। उसको कुछ भी अप्राप्य नहीं होता।

कलश पूजा में ब्रह्मचर्य गान

हम काश्मीरियों में एक प्रथा प्रचलित है कि प्रत्येक शुभ कार्य के होम पर कलश पूजा हो। एक सुन्दर जल पूर्ण पात्र भली प्रकार आवृत्त कर पूजा स्थान में रख गुरु जी अर्घ्य-पुष्प आदि से उसकी पूजा करते हैं। दशो दिशाओं से सोम देव को कलश में आवाहन किया जाता है। कलश की आध्यात्मिक पहेली को यथार्थ रूप से जानने के इच्छुक सामवेद के पावमान पर्व का अध्ययन करें। यहां तो दिग्दर्शनमात्र कराया जा सकता है। आशा है कि ऐसी रूढि क्रियाओं से निराश पाठक

कलश शब्द की व्युत्पत्ति और उसकी आध्यात्मिक लक्षण को समझ अवश्य प्रसन्न होंगे।

कलं मधुराव्यक्तं ध्वनिं शर्वाति करोति

अर्थात्

जो मधुर अव्यक्त शब्द करे वह कलश है। यह पूजा विस्तार से होती है। यहां कुछ ही श्लोक उद्धृत कर कहना होता है कि काश्मीर प्रदेश के गृह्य-सूत्रकार लौगाक्षि मुनि ने कलश पूजा कराने वालों के आत्मोद्बोधनार्थ संकेत किया है कि तुम्हारे हृदय कलश सागर में भी ऐसी मीठी ध्वनि हुआ करे, रसाभृत छलकता-उमड़ता हिलोरे लिया करे, यही कलश का कलशत्व और उसकी उपयोगिता है। कलश हृदय मस्तिष्क और वीर्यकोष का उपलक्षण है। देखिये पूजा के श्लोक क्या कहते हैं:—

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः कश्यपो यास्विन्द्रः। या अग्निं गर्भं दधिरे विरूपास्ता न आपः शंस्योना भवन्तु॥

यह सोने के सदृश निर्मल वर्ण वाले जल स्वयं पवित्र होते हुए सबको पवित्र बनाने वाले हैं। वीर्य शक्तियों से कश्यप समान अनेकों ऋषि, मुनि और इन्द्र प्रभृति देव उत्पन्न हुए। अन्यों की तो गणना ही क्या॥

इन श्लोकों में 'आपः' शब्द कहकर भौतिक जल देवता

की स्तुति की गई है, ऐसा लोग समझते हैं परन्तु ऐसा है नहीं यहां यो 'आप' शब्द वीर्य अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसका यह आशय है कि साधक अपने आपको वीर्य के गुण बार २ सुझा कर वीर्य रक्षा की ओर अपना ध्यान आकृष्ट कर रहा है।

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जना-नाम्। या अग्निं गर्भं दधिरे विरूपास्ता न आपः शंस्योना भवन्तु॥

जिन वीर्य रसों के मध्य शोभायमान आत्मा संचार पा रहा है और मनुष्यों के उत्पादक गुणों के सत्य और अनृत अर्थात् धर्माधर्म को देख रहा है। जो वीर्य नाना रूपों वाले होकर आग्नेय गर्भ का धारण करते हैं वे वीर्य अत्यधिक सुखकारी हों।

सत्य बात तो यह है कि संसार है ही वीर्यवानों का और वीर्यवानों के लिए। वीर्यवान ही कर्मयोगी बन सकते हैं। यह कहना सर्वथा सत्य है कि चराचर जगत् में जो भी सौन्दर्य शक्ति और मोहकता आदि दृष्टिगोचर होती है वह सब रस राज वीर्य की ही देन है।

वेद के ब्रह्मचर्य सूक्त का अध्ययन एवं अन्य धर्मशास्त्रों की समीक्षा से ब्रह्मचर्य का व्यापक प्रताप सूर्यालोकवत् स्पष्ट है। इस संसार में जो कुछ सात्त्विक, राजस एवं तैजस तथा दिव्य विभूतियां दिखाई देती हैं, उनका एकमात्र कारण ब्रह्मचर्य है।

वास्तविक स्वास्थ्य, बल, तेज, सामर्थ्य, सौन्दर्य, आनन्द, उत्साह, आकर्षण, असमानता, श्रेष्ठता तथा ऐश्वर्यादि उच्च गुणों का समावेश इसी के द्वारा होता है। निर्भयता, साहस, प्रतिभा, शील, श्रद्धा, भक्ति का स्रोत, उपकारी युक्तियां, दृढ़-संकल्प, अमरता तथा मृत्युञ्जयता धारण करने की शक्ति प्रदान करने वाला ब्रह्मचर्य ही है। शतपथ ने भी कहा है—

ब्रह्मचारी न कञ्चनार्तिमृच्छति ।

(ब्रह्मचारी पूर्णकाम हो जाता है) इसी ब्रह्मचर्य का ही अखण्ड प्रताप है जिससे देवों ने मृत्यु को भी जीत लिया।

हिरण्य वर्णाः शुचयः पावका विचक्रमुर्हित्वा वद्यमापः ।
शतं पवित्रा वितताऽन्यासां ताभिर्मा देवः सविता पुनातु ॥

सुवर्ण के सदृश चमक वाले, शुद्ध स्वरूप एवं पवित्रता के साधक वीर्य विनाशनीय पाप का त्याग कर विविध रूपों में संक्रमण करते हुए पृथ्वी पर दृष्टिगोचर होते हैं। ये अति विस्तृत तथा पवित्र करने वाले रूपों में विद्यमान होते हैं। इन वीर्यों का अधिपति सब का उत्पादक परम पिता परमेश्वर उन उत्तम वीर्यों से मुझे पवित्र करे।

सोम ही उत्पादक पालक और मारक है।

यः पावमानीरध्येति ऋषि भिः संभृतं रसम् ।
सर्वं स पूत मश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥

दक्षिण से उत्तर को चलने वाली प्राणवायु 'मातरिश्वना' कहलाती है। बिना इस वायु के कोई ऊर्ध्वरेता हो ही नहीं सकता। स्वाधिष्ठान स्थान दक्षिण है, मस्तिष्क उदीचि दिशा है। स्वाधिष्ठान ही वीर्य का क्षेत्र है वहां से जब प्राण मस्तिष्क की ओर प्रवाहित होता है तभी पुरुष ऊर्ध्वरेता होता है।

यः पावमानीरध्येति पवित्री करणारयाम्।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्म धूदकम्॥

ज्ञानियों वा ऋषियों ने जिन ऋचाओं में वीर्य रस की महिमा भरदी है उन सोम महिमा के भावों से भरपूर पावमानी ऋचाओं को जो मनन करता है वह व्यक्ति प्राणायाम संबन्धी शुद्ध वायु से शोधित सम्पूर्ण अन्नादि के रसों का प्रकष्ट वीर्य के रूप में अशन करता है। यही तो सोम पान है। तथा वही सोम महिमा की प्रति पादक पावमानी ऋचाओं को सरस्वती वाणी क्षीर के सदृश शुद्ध धर्म को, घृत के समान स्निग्ध स्वर्गादि कामों को, मधु तुल्य एक रस रूप अपवर्ग को और दूध आदि भोगों को दोहती अर्थात् प्राप्त कराती है॥

पावमानीः स्वस्त्ययनी याभिर्गच्छति नन्दनम्।
पुण्याश्च भक्ष्यान्भक्षयत्य मृतत्वं च गच्छति॥

आयुवर्धक यही पावमानी वीर्य है जिस की रक्षा द्वारा मनुष्य देवोद्यान का आनन्द लाभ करता है और पुण्य कर्मों के फल रूप स्वर्गादि भोगों को भोगता तथा मोक्ष रूप अमृतत्व को पाता है।

उपनिषद् भी कह रहे हैं कि बलहीनों के लिये देवोद्यान रूप आत्मा अलभ्य है।

पावमानी र्दिशन्तु न इमं लोकमथो अमुम् ।
कामान् समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहृताः ॥

यह पावमानी वीर्य शक्ति हमारे लिए इहलोक और परलोक अर्थात् उभयलोक की प्राप्ति कराने वाली हो। यह वीर्य हमारे सब काम्य अर्थों की वृद्धि का करने वाला हो। यशस्वी ऋषियों ने इसी का भली प्रकार संग्रह किया। यह तो ठीक है ही कि मनुष्य का भोग और अपवर्ग दोनों ही ब्रह्मचर्य के बिना पूरे नहीं हो सकते। दूसरे शब्दों में, पितृयान और देवयान मार्ग दोनों पर चलने के लिये ब्रह्मचर्य की जरूरत है। जो पुरुष वा कन्या ब्रह्मचर्य नहीं करते वे 'भोक्ता' (अन्नाद) नहीं बन सकते। भोक्ता बनने की शक्ति ब्रह्मचर्य से आती है। आज हम देख रहे हैं कि दुनिया भोक्ता बनना चाहती है परन्तु ब्रह्मचर्य के अभाव के कारण भोक्ता की जगह भोग्य ही बन रही है। भोग्य पदार्थों की गुलाम, परवश बन रही है और अथाह दुःख-गर्त्त में अधोमुख जारही है। भोक्ता बनने के लिये हमें ऊंचा उठाने वाले, ज्ञानयुक्त होश में रखने वाले ब्रह्मचर्य की ही जरूरत है। (कनी दीप्ता) से कन्या तेजस्विनी अर्थ में है।

पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः ।
ऋषिभिः संभृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतं हितम् ॥

पावमानी नामक यह वीर्यशक्ति पवित्रता उत्पन्न करने

वाली, दीर्घायुष्यकारिणी, उत्तम फलों का दोहन करने वाली और तेज का विस्तार करने वाली है। मंत्र सार के ज्ञाता ऋषियों से यही रस रूप वीर्य संग्रहीत किया गया। यही भोगियों को अमरत्व प्रदान करने वाला और मुमुक्षु जनों को मुक्ति देने वाला है।

येन देवाः पवित्रेण आत्मानं पुनते सदा।

तेन सहस्रधारेण पावमान्यः पुनन्तु नः॥

जिस शोधक वीर्य से देवों ने अपने को पवित्र किया उस असंख्य शक्तियों वाले वीर्य से हम भी पवित्र होवें।

नारवन मंत्र जिसकी यह सब व्याख्या होरही है यही तो कह रहा है कि वीर्य अनन्त गुणों का भण्डार है अतुल सुखदाता और दीर्घायु प्रदान करने वाला है।

नारवन

अब इस निबन्ध के आधारभूत मन्त्र पर कुछ कहता हूँ—यजु ३४–५२।

मन्त्र आत्मा में प्रवेश के इच्छुक पाठक इस मन्त्र को इसके पूर्व मन्त्र ३४–५१ के साथ मिला कर मनन करें।

न तद्रक्षांसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजह्येतत्। यो बिभर्त्ति दाक्षायण ँ हिरण्य ँ स देवेषु कृणुतेदीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः॥

यजु० ३४। ५१

हे मनुष्यो ! जो (देवानाम्) विद्वानों का (प्रथम जथं) प्रथम अवस्था वा ब्रह्मचर्य आश्रम में उत्पन्न हुआ (ओजः) बल पराक्रम है (तत्) उसको (न, रक्षांसि) न अन्यों को पीड़ा विशेष देकर अपनी ही रक्षा करने हारे और (न पिशाचाः) न प्राणियों के रुधिर आदि को खाने वाले हिंसक म्लेच्छाचारी दुष्टजन (तरन्ति) उल्लंघन करते (यः) जो मनुष्य (एतत्) इस (दाक्षायणम्) चतुर को प्राप्त होने योग्य (हिरण्यं) तेजः स्वरूप ब्रह्मचर्य को (बिभर्त्ति) धारण वा पोषण करता है (सः) वह (देवेषु) विद्वानों में (दीर्घम्, आयुः) अधिक अवस्था को (कृणुते) प्राप्त होता और (सः) वह (मनुष्येषु) मननशील जनों में (दीर्घम्, आयुः) बड़ी अवस्था को (कृणुते) प्राप्त करता है

भावार्थः—जो प्रथम अवस्था में बड़े धर्मयुक्त ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या पढ़ते हैं उनको न कोई चोर न दायभागी और न उनको भार होता है जो विद्वान् इस प्रकार धर्मयुक्त कर्म के साथ वर्त्तते हैं वे विद्वानों और मनुष्यों में बड़ी अवस्था को प्राप्त होके निरन्तर आनन्दित होते और दूसरों को आनन्दित करते हैं।

(दयानन्द)

(तत्) उस पूर्वोक्त तेज को (न रक्षांसि) न सत्कार्यों में विघ्न करने वाले, दुष्ट, स्वार्थी पुरुष और (न पिशाचाः) न प्राणियों के मांस रुधिरादि खाने वाले, क्रूर अत्याचारी लोग (तरन्ति) लांघते हैं। (हि) क्योंकि (एतत्) वह (प्रथमजं) सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ सर्वश्रेष्ठ, (देवानामोजः) देव विद्वान्

विजिगीषु पुरुषों का, परम बल, पराक्रम एवं वीर्य है। (यः) जो (दाक्षायणाः) दक्ष अर्थात् व्यवहार कुशल, एवं बलवान् प्रज्ञावान् पुरुष से संचालन करने योग्य, (हिरण्यं) प्रजाओं के हितकर और सुखकारी बल, (बिभर्त्ति) धारण एवं पालन करता है (सः) वह (देवेषु) देव, विद्वान् विजीगीषु पुरुषों के बीच में (दीर्घमायुः कृणुते) दीर्घ जीवन उत्पन्न करता है और (सः) वह ही (मनुष्येषु दीर्घम् आयुः कृणुते) मनुष्यों के भी जीवन को चिरस्थाई कर देता है।

जो राजा अपने सेना बल को पुष्ट करता है उसके बल का पार दुष्ट राक्षस और पिशाच भी नहीं पाते। वह अपने वीर पुरुषों और प्रजाजनों के जीवनों की रक्षा करता है। ब्रह्मचर्य पक्ष में—(देवानां हि एतत् प्रथमजं ओजः) विद्वान् लोगों का आयु के प्रथम भाग में उत्पन्न ब्रह्मचर्य रूप वीर्य है जिसको राक्षस और पिशाच नहीं पार कर सकते। दक्ष अर्थात् बुद्धिमान् पुरुषों से प्राप्त होने योग्य उसको जो धारण करता है वह विद्वानों और मनुष्यों में अपने जीवन को बहुत दीर्घ बना लेता है। (श्री पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार)

This gold no demons injure, no Pishachas: for this is might of gods, their primeal affspring, whosover wears the gold of Daksha's children lives a long life among the gods, lives long life among mankind.

(Griffith)

यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्य ँ शतानीकाय सुमनस्यमानाः। तन्म आबध्नामि शतशारदायायुष्मा ञ्जरदष्टिर्यथासम् ॥ यजु. ३४।५२

पदार्थः—जो (दाक्षायणाः) चतुराई और विज्ञान से युक्त (सुमनस्यमानाः) सुन्दर विचार करते हुए सज्जन लोग (शतानीकाय) सैंकड़ों सेना वाले (मे) मेरे लिए (यत्) जिस (हिरण्यम्) सत्याऽसत्य प्रकाशक विज्ञान का (आ, अबध्नन्) निबन्धन करें (तत्) उस को मैं (शतशारदाय) सौ वर्ष तक जीवन के लिए (आ, बध्नामि) नियत करता हूं। हे विद्वान लोगो ! जैसे मैं युष्मान्) तुम लोगों को प्राप्त हो के (जरदष्टिः) पूर्ण अवस्था को व्याप्त होने वाला (असम्) होऊं वैसे तुम लोग मेरे प्रति उपदेश करो।

भावार्थः—एक ओर सैंकड़ों सेना और दूसरी ओर एक विद्या ही विजय देने वाली होती है। जो लोग बहुत काल तक ब्रह्मचर्य धारण करके विद्वानों से विद्या और सुशिक्षा को ग्रहण कर उस के अनुकूल बर्त्तते हैं वे थोड़ी अवस्था वाले कभी नहीं होते ॥ ५२ ॥ (ऋषि दयानन्द)

(दाक्षायणाः) दक्ष अर्थात् वीर्य बल और प्रज्ञा के एक मात्र आश्रय, और दक्ष, अर्थात् सेना बल के 'अयन' अर्थात् मुख्य अधिकारों पर स्थित वीर पुरुष (यद्) जिस बल को (सुमनस्यमानाः) परस्पर उत्तम चित्त वाले होकर (शतानीकाय)

सैंकड़ों सैनिकों के स्वामी सेनापति के लिये (आबध्नन्) बांधते हैं, उसको नियम व्यवस्था में रखते और अपने अधीन वेतनादि पर नियुक्त करते हैं। (तत्) उसी सैन्यबल को मैं (मे) अपने राष्ट्र के लिये (शतशारदाय) सौ वर्ष के दीर्घ-जीवन के काल तक के लिये (आबध्नामि) बांधता हूँ, व्यवस्थित करता हूँ और (यथा) जिस से मैं (आयुष्मान्) दीर्घ आयु से मुक्त होकर (जरदष्टिः) जरावस्था का भोग करने वाला पूर्णायु (असम्) होऊँ।

ब्रह्मचर्य के पक्ष में—बलों और ज्ञानों के निधान विद्वान् पुरुष जिस विज्ञान और व्रत पालन रूप 'हिरण्य' अर्थात् वीर्य को शुभ चित्तवान् आचार्य गण सैंकड़ों सेनाबलों से युक्त सेनापति के समान बलवान् एवं सौ वर्षों तक जीवन प्राप्त करने एवं सैंकड़ों विद्याओं को मुख से कहने में समर्थ होने के लिये नियम से पालन करते हैं उसी को मैं भी सौ वर्ष तक पूर्णायु प्राप्त करने के लिये बांधू, नियम पूर्वक पालन करूँ।

(श्री. पं. जयदेव शर्मा विद्यालंकार)

This ornament of gold which Daksha's children bound with benevolent thoughts on Satanika, I bind on me for life through hundred antumns that I may live till ripe old a age over takes me. (Griffith)

آج یہ عہد مرا ہے کہ وفادار بنوں | امن و ایمان کی رفاقت کا طرفدار بنوں

ہر غم چیرہ کے آنسوؤں کا نگہدار بنوں | دین و دکھیوں کا غریبوں کا مددگار بنوں

اپنی مضراب عمل سے میں وہ جھنکار کروں

بخت خفتہ کو ہر انسان کے بیدار کروں

امر ناتھ سپرو

رباعیات

دل کو آئینہ پر آب سے بڑھکر کر دوں | چشم کو نور حقیقت سے منور کر دوں

کاش جینا ہو میسر مجھے جینے کی طرح | جسم کو غیرت بتخانہ آذر کر دوں

دیگر

نیم اور دھرم کی بنیاد جما دوں تو سہی | سچ بل سے نہ زمانے کو ہلا دوں تو سہی

ہر غم چیرہ کے آنسو کا جو پالن کر لوں | سو برس جیسے نہ دنیا کو دکھا دوں تو سہی

دیگر

ہر غم چیرہ کا اگر درد میسر ہو جائے | سنگ در بیوہ کے بخت سکندر ہو جائے

علم والوں کا جو ہو نقش قدم بھی رہبر | عمر انسان کی تو سو سال مقرر ہو جائے

اپنی چترائی سے گیان بڑھا دو تو سہی | اور خیالات کو پاکیزہ بنا دو تو سہی
لاکھوں سینائیں اگر مد مقابل ہوں تیار | اپنے بل سے انھیں پیچھے نہ ہٹا دو تو سہی

دیگر

ہر جسم چھریرہ ہی بدن صحیح ہیئت بنا سکتا ہے | یہ وہ ہے مال کہ کبھی نہ چھڑا سکتا ہے
اصلی سنجیونی بوٹی ہے رسِکا کا سار | یہ وہ امرت ہے کہ جیون کو بڑھا سکتا ہے

دیگر

قطروں کو سمندر میں ملا دیتا ہوں | تفریق جزو و کل ہی مٹا دیتا ہوں
گو کالبدِ خاک ہے فانی سیرؔ | اس پر بھی امر ہو کے دکھا دیتا ہوں

سیرؔ۔ اکبرآبادی۔

گذارش

میرے بے وزن مصرع جات کو محترم دوست جناب لالہ شیام نرائن ماتھر المتخلص بہ سیرؔ اکبرآبادی حال مقیم دہرہ دون نے جاندار اور زندہ بنا کر مجھ سے بے بہرہ

نیازمند کو بہرہ ور کر دیا۔ یقین ہے کہ ناظرین مستفیض ہوں گے۔

امرناتھ سپرو۔ آمر

مطبوعہ ماڈل پرنٹنگ ورکس ڈسپنسری روڈ ۔ دہرہ دون

نارون

نوٹ: یجر وید ادھیائے ۳۴ منتر ۱۵ و ۵۲ کے آدھار پر لکھے گئے۔

وید کہتے ہیں کہ اسرار نہاں ہے برج — اور جواں سارے کو پیاوار جہاں ہے برج
عشق وانپہ سدا اشک فشاں ہے برج — چور ڈاکو کیلئے خوف سناں ہے برج

اسکے ہی نام کی گاتے ہیں سبھی سنت کتھا
یہ کتھا اتنی نیرالی ہے کہ ہے ونت کتھا

حرف سے بے کے ہوئی سیل بدیجی زائل — حرف سے یے کے ہوئی یار کی یاری کامل
حرف سے رے کے ہوئی رہزیا نفرت نازل — حرف سے جیم کے ہے جدت وجود حاصل

چشمۂ فیض دو عالم میں ہے اسکا جاری
سبز رہتی ہے سخاوت کی سدا پھلواری

جیکے آشرم میں رہتا کسی عالم سے کام — دین و دنیا میں ہمیشہ ہے اسی نام سے کام
ہے معصومیت سے کوئی کام نہ آلام کا کام — جسکو مل جائے اسے رہتا ہے آرام کا کام

دینی قوت سے ہو غالب وہ لشکر لاکھوں پر
سو برس زندہ رہے پائے ظفر لاکھوں پر

अनन्त बलों के भण्डार हिरण्य तेज (वीर्य) को मैं समत्त्व रूप से धारण करने की प्रतिज्ञा करता हूँ। जिससे मैं सैंकड़ों पर विजय पाने वाला, आयुष्मान्, सौ वर्ष जी कर बुढापा देख सकूं। हे विद्वानो! ऐसी कृपा करो कि मैं वैसा बन जाऊँ।

प्रण आज करूँ मैं भूदेवन सन्मुख।
व्रत पाल रहूंगा आजीवन उन्मुख॥
जिसके बलबूते सकल आर्य अदीन।
चिरजीवन पाते योग भोग प्रवीण॥
हिरण्य सम व्रत हो हिरण्य रहे टेक।
हिरण्य घन बरसे नित नये अभिषेक॥
सीख हिरण्य कला बल पौरुष सागर।
करूँ हिरण्य पान शत शारद नागर॥
एकांगीन नहीं हों सब अंग भरे।
शोभा धाम रहे पावन रंग भरे॥
सुनो हिरण्य देव अज टेर सुनाऊं।
करो असीस दान तव साख चलाऊं॥
शत जित शत धाता शत जनन आधार।
तन मन यश गावें तव गुणन साकार॥

(अ० न० स०)

वेदों के अनेक स्पष्ट उद्धरण और भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिनमें ब्रह्मचर्य को बल, पूर्ण आयुदाता, जीवों का

प्राण रक्षक तथा विवेक वृत्ति और दुःख निवृत्ति का साधक कहा है। व्रत पालक "व्रतानां व्रत पते" प्रभु से शक्ति प्राप्त कर अपने व्रत पर दृढ़तापूर्वक उत्तरोत्तर उन्नत पथ पर गतिशील रहने के लाभार्थ हमारे बुद्धिमान पूर्वजों ने जीवन में पुनः पुनः नारबन्न बन्धन का विधान कर दिया है। मन्त्र ३४।५२ में स्वामी दयानन्द जी के अनुवाद और आंगल अनुवाद में निम्न लिखित शब्दार्थ का भेद है:—

शब्द	प्राचीन अर्थ	नवीन अर्थ
(क) दाक्षायण	बलों के भण्डार	दक्ष की सन्तान
(ख) हिरण्य	वीर्य	स्वर्ण
(ग) शतानी काय	सैंकड़ों सेनाओं के विजय के लिए	शतानीक नाम के व्यक्ति विशेष के लिये

यह अन्तर क्यों ? यह विषय गम्भीर पाण्डित्य का है, मैं उसकी समुचित शास्त्रीय विवेचना न कर सकूंगा। इतना ही कह सकता हूं कि "शत-पथ[1]" में दिये हिरण्य, दाक्षायण, शतनीक की आध्यात्मिक गाथाओं का कथामात्र, वैयक्ति इतिहास समझ लेना

---

१. शत-पथ काण्ड ४।४।८

सेक्रिड बुक्स आफ ईस्ट मैक्स मूलर।

"शत-पथ" पृष्ट ४००, ४०१

और प्राचीन शैली के विपरीत यौगिक और योग रूढि अर्थों के स्थान पर मध्यकालीन पण्डितों की तरह रूढि अर्थ करना है।

पाठक देखेंगे कि नवीन शैली के अर्थ से तो **नारवन** की उपयोगिता दो कौड़ी की भी नहीं रहती। पहले तो स्वर्ण बांधने वाले को दाक्षायण और शतानीक की कथा सुनाई जाय, सुन कर भी उसको क्या लाभ होगा जबकि पूर्व मन्त्र स्पष्ट कह रहा है कि हिरण्य (वीर्य) वह धन है जिसको न राक्षस छीन सकता है न पिशाच। भौतिक स्वर्ण के लागू तो संसार में बहुत हैं, इसीलिए उसका स्वामी हर समय भयभीत रहता है। अतः यह तो स्वयं ही सिद्ध हो गया कि नारवन मन्त्र का चुनाव करने वाले हमारे पूर्वज पण्डितों को ऋषि दयानन्द निर्दिष्ट प्राचीन शैली का ही अर्थ अभीष्ट था।

आज संसार में बर्थ कन्टरोल (सन्तति निग्रह की दुहाई मच रही है। लोग कहते हैं कि यह इस शती की देन है। वेद भी चिर से कह चुके हैं, केवल साधन भेद है। भगवती श्रुति तो इस से भी आगे कहती है मनुष्यो! मृत्यु विजय (Beath Control) सीखो। सन्तति निग्रह तो इसके अन्दर स्वतः ही आ जायगी। **नारवन** मन्त्र मृत्यु विजय का अमोघ साधन ही तो है।

पाठक वृन्द की सहायतार्थ श्री पं० वासुदेवशरण (मथुरा) लिखित "दाक्षायण-हिरण्य" विषयक एक सारगर्भित समस्त लेख जो वैदिक विज्ञान अक्टूबर १९३२ ई० में छपा था, दे रहा

हूं। विश्वास है कि मन्त्र आत्मा को समझने में लाभदायक होगा।

दाक्षायण हिरण्य

वेदों में अनेक प्रकार से हिरण्य का वर्णन पाया जाता है। हिरण्य सतोगुण का वाचक है। चांदी रजोगुण और लोहा तमोगुण है। ये ही तीन पुर त्रिपुरासुर दैत्य ने स्वर्ग अन्तरिक्ष और पृथिवी में बनाये थे।

> ततोऽसुरा एषु लोकेषु पुरश्चक्रिरे।
> अयस्मयं तीमेवास्मिल्लोके,
> रजतामन्तरिक्षे
> हरिणीं दिवि। शतपथ ३। ४। ४।३

अर्थात् असुरों ने इन लोकों में तीन पुर बनाये। अयस्मयी पुरी इस पृथिवी लोक में, रजतमयी पुरी अन्तरिक्ष में और हिरण्मयी पुरी द्युलोक में वैदिक, परिभाषा में त्रैगुण्य के ही यह तीन नाम हैं। इस के अनुसार हिरण्यमय लोक सर्वश्रेष्ठ तृतीय स्थान द्युलोक है। यह द्युलोक ही अध्यात्म शास्त्र में मानुषी मस्तिष्क है। मेरुदण्ड का भाग पृथिवी लोक है। जिस में 'मेरुकन्द' (Spinal bulb) और मस्तिष्क(Cerebellum) आदि भाग सम्मिलित है। सोम की स्थिति भी स्वर्ग में ही कही गई है। सोम कलश द्युलोक में प्रतिष्ठित है। वस्तुतः अध्यात्म-परिभाषा के अनुसार मस्तिष्क ही सोम से भरा हुआ कलश या पूर्णकुम्भ है। सोम ही अमृत है। अमृत भी द्युलोक में

रहता है जहां देवता उस की रक्षा करते हैं। मस्तिष्क में भरा हुआ जो रस है वही सोम है। समाधियुक्त, विचार, सत्य संकल्प, पवित्र भाव, अमृत आशा, सतोमयी बुद्धि, ब्रह्मचारियों की मेधा—इन सब का स्रोत या मूलकारण मस्तिष्क का पवित्र सोम ही है। अर्वाचीन शरीर विज्ञान के अनुसार भी मस्तिष्क का रस (Cerebral fluid) ही सब प्रकार के स्वास्थ्य और पवित्रता का कारण है। उसी की शुद्धि से मनुष्य शक्ति और प्राण प्रदीप्त रहते हैं। इस प्रकार के तत्व को ध्यान में रख कर ऋषियों ने मस्तिष्क को ही सोम का द्रोण-कलश माना है।

इस सोम को यज्ञ में सुवर्ण से मोल लिया जाता है। सुवर्ण क्या है और क्यों सोम प्राप्ति के लिये सुवर्ण या हिरण्य देना पड़ता है ? इस प्रश्न का उत्तर बहुत स्पष्ट है। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है:—

शुक्रं ह्येतत् शुक्रेण क्रीणाति
यत्सोमं हिरण्येन। श. ३। ३३। ६

अर्थात् हिरण्य के द्वारा जो सोम खरीदा जाता है उस का तात्पर्य यह है कि शुक्र के द्वारा शुक्र मोल लिया जाता है। सोम भी शुक्र है और हिरण्य भी शुक्र है। शुक्र, वीर्य, रेतस् ये पर्यायवाची हैं, वस्तुतः सोम और हिरण्य भी वीर्य के नामान्तर हैं यथा:—

रेतः, सोमः, । श ३ । ३ । २१९ ।
रेतः हिरण्यम् । तै० ३ । ८ । २१८ ।

वीर्य की शक्ति से ही शरीर के भीतर के समस्त रसों का पोषण होता है, वीर्य ही प्राणों को शुद्ध और पुष्ट करने वाला है, वीर्य ही मस्तिष्क को और समस्त नाड़ी जाल को सींच कर हरा भरा और मजबूत बनाता है। इसी लिये वीर्य की आहुति से सोम पुष्ट होता है, वीर्य को शरीर में ही भस्म करके तेज में परिणत कर लेना वीर्य के द्वारा सोम को खरीदना है। इसी लिये स्थूल यज्ञ में सुवर्ण और सोम के विनिमय का विधान है। जिस के पास सुवर्ण की पूंजी नहीं है वह सोम पान का आनन्द कैसे उठा सकता है ? हिरण्य से ही प्राण, आयुष्य, तेज ज्योति, ओज आदि की प्राप्ति होती हैं। हिरण्य या शुक्र ही सम्पूर्ण अध्यात्म जीवन वा नैतिक उन्नति का आधार है। हिरण्य की रक्षा ही महान् तप है। वैदिक कवि हिरण्य और सोम की महिमा का सहस्र मुख से वर्णन करते हैं। ऋग्वेद के पवमान सोम नामक नवम मण्डल में इसी अध्यात्म सोम का वर्णन है जिस का हम ने ऊपर संकेत किया है।

शरीरस्थ प्राणाग्नि वीर्य या हिरण्य को पचा कर उस की भस्म बना कर उसे आकाश संचारी बनाती है। यह परिणित वीर्य ही केन्द्रीय नाड़ी संस्थान अर्थात् सुषुम्णा के मार्ग से ऊपर उठता हुआ और उत्तरोत्तर तप से शुद्ध होता हुआ मस्तिष्क में पहुँचता है। वहां यह दिविस्थ सोम कहलाता है। वहां यह मस्तिष्क के सूक्ष्मातिसूक्ष्म यन्त्र से पवित्र किया

जाता है। पुनः वह सुषुम्णा की ओर बहता है। जिस प्रकार सूर्य की रश्मियों से जल आकाशगामी हो कर पुनः पृथिवी पर आता है उसी तरह शरीरस्थ रसों के प्रवाह का चक्र भी पूर्ण होता है। मस्तिष्क में चार वापी (Ventricles) हैं, उन में यह सोम रस पवित्र किया जाता है। इन चारों का ऋग्वेद के नवम मण्डल में वर्णन आता है। कहीं पहली और दूसरी वापी को मिला देने से तीन चमुओं का भी वर्णन है। इन चारों के संधिस्थान त्रिक द्रूक है, जहां बैठ कर देवों ने सोमपान किया। इन वर्णनों का रहस्य अध्यात्मपरक ही समझना चाहिये। अन्यथा इन की संगति लगनी कठिन है। यहां हम यह बताना चाहते हैं कि सोम और हिरण्य का अन्योऽन्याश्रय संबन्ध है। हिरण्य से सोम और सोम से हिरण्य पुष्ट होता है, दोनों ही शुक्र की संज्ञाएं हैं। इस भाव को समझ कर अब हमें दाक्षायण हिरण्य पर विचार करना चाहिये। अथर्व वेद के प्रथम काण्ड के ३५ वें सूक्त में इस हिरण्य का प्रतिपादन[१] है टीका कारों ने हिरण्य का अर्थ सोना मान कर कई कल्पनाएं की हैं। कुछ के अनुसार इस सूक्त में सोने का आभूषण पहिनने का उपदेश है, क्यों कि उससे आयु की वृद्धि होती है। किसी का मत है कि स्वर्णपर्पटी अथवा स्वर्ण भस्म के रूप में खाना चाहिये। इस से भी आयु प्राप्त होती है। हमारी समझ में ये अर्थ स्थूल हैं और केवल एक अंश में ही सत्य हो सकते हैं। सूक्त का विशद अर्थ अध्यात्मपरक ही है। वीर्य रूप हिरण्य की रक्षा का ही यहां उपदेश है सब देवों की सुमनस्यमान (harmonised) स्थिति से वीर्य की रक्षा हो सकती है। जब ५ इन्द्रियां और प्राण

१. देखो पृष्ठ ३६ पर

एक चित्त होकर प्रयत्न करते हैं तभी सब ओर से पवित्र विचारों का दृढ़ दुर्ग तैयार होता है।

आयु की १०० वर्ष की वैदिक मर्यादा की प्राप्ति के लिये ब्रह्मचर्य आश्रम की निर्विकार स्थिति आवश्यक है। प्रथम आश्रम में जिसने हिरण्य का संचय किया है, वही आयु की पूरी मर्यादा का भोग करता है। यह सुवर्ण देवों का सर्वश्रेष्ठ या 'प्रथम ज[1] ओज' है। यह सब इन्द्रिय-तेजों में श्रेष्ठ और ज्येष्ठ है। इसके सामने पाप नहीं ठहर सकते। इस पावक में पाप रूपी तिनके तुरन्त भस्म हो जाते हैं।

नैनं रक्षांसि न पिशाचा स्तरन्ति
देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत् ॥

॥ १ । ३५ । २ ॥

आयु वर्चस् और बल की प्राप्ति के लिये हिरण्य की रक्षा की जाती है, यह दाक्षायण है। दक्ष का तात्पर्य वीर्य अर्थात् शक्ति है। सब प्रकार की शक्तियों का अयन दाक्षायण है। रेत ही सब वीर्यों का अधिष्ठान है। प्रत्येक पुरुष शतानीक है। प्राण शतानीक है, वह विश्वतोमुख है अथवा वह सब सेनाओं का सेनानी है। सेनानी को भी अनीक कहते हैं। प्राण रूप शतानीक के लिये दाक्षायणों ने हिरण्य को कल्पित किया। दक्ष वरुण की संज्ञा है। क्रतु मित्र को कहते हैं।

क्रतु दक्षौ ह वाऽस्य मित्रावरुणौ
मित्र एव क्रतुर्वरुणो दक्षः

॥ श० ४ । १ । ४ । १ ॥

---

१ देखो पृष्ठ ३६

क्रतु दक्ष, प्राणापान, मित्रावरुण ये द्वन्द्व हैं। अपान की शक्तियों ने प्राण के लिये हिरण्य का कुम्भक किया अपान से प्राणों की ओर ले जाने वाली वायु स्वास्थ्य की सूचक है। दक्षिण से उत्तर को चलने वाली प्राणवायु मातरिश्वा कहलाती है। बिना इस वायु के कोई उर्ध्वरेता हो ही नहीं सकता। स्वाधिष्ठान स्थान दक्षिण है, मस्तिष्क उदीची दिशा है। स्वाधिष्ठान ही वीर्य का क्षेत्र है। वहां से जब प्राण मस्तिष्क की ओर प्रवाहित होता है तभी पुरुष ऊर्ध्व रेता होता है।

अधिष्ठान प्रदेश में जलतत्व प्रधान है। वीर्य या रेत भी जल का ही रूप है। ऐतरेय उपनिषद् (१। २। ४)में लिखा है:-

आपः रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्।

अर्थात् जल रेत रूप स्वाधिष्ठान चक्र में रहते हैं यहीं से यह शरीर में व्याप्त होकर उसे पुष्ट करते हैं जिस हिरण्य को हम बांधना चाहते हैं उसे ऋषि ने जलों का तेज, ज्योति, ओज और बल कहा है। जल ही रस है, रसों में अग्रणी रस रेत ही है। सब वनस्पतियों के वीर्य भी हिरण्य रूप ही हैं। स्थूल अन्न से ही रस उत्पन्न होता है। पुनः उसी के क्रमशः परिपाक होने से रेत बनता है। प्रत्येक मास, ऋतु, अयन और संवत्सर से पिण्ड और ब्रह्माण्ड के अन्दर से प्राण रूपी रस का नये नये प्रकार से क्षरण होता है। शरीर के भीतर बाल्य, यौवन और जरा में विचित्र २ रस अपने समय से उत्पन्न होते हैं। उन को विधिपूर्वक शरीर में ही पूर्ण कर लेने से आयुष्य की वृद्धि होती है। इसी प्रकार बसन्त, ग्रीष्म और शरद् में तथा कृष्ण और

शुक्ल पक्षों के ह्रास वृद्धि क्रम में, औषधि वनस्पतियों में अनेक रसों का प्रादुर्भाव होता है। उनसे वनस्पति पुष्ट होती हैं। वे रस हमारे लिये तभी अनुकूल हो सकते हैं जब हम हिरण्य की रक्षा करते हैं। इन्द्र और अग्नि सात्विक प्राणापान के नाम हैं। वे हमारे लिये हिरण्य रक्षा की अनुमति देवें।

उपनयन में नारवन

यही दो मन्त्र किञ्चित पाठभेद से अथर्ववेद में भी आये हैं।

यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः
तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चसेबलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय

अथर्व १।३५।१॥

What gold the descendants of Daksa. well–willing, bound on for Catanika, that I bind for Thee. in ordr to life (Ayus), Splendor, Strength, to length of life for a hundred autumns.

(whituey)

(दाक्षायणाः) दक्ष रूप आत्मा के आश्रय पर रहने वाले योगी लोग (सुमनस्यमानाः) शुभ संकल्प वाले होकर (शतानीकाय) सैंकड़ों अनीक, बल, सामर्थ्यों और आयु के शत वर्षों तक जीने हारे देह के लिए (हिरण्यं) हितकारी और अतिरमणी (यत्) जिस वीर्य को (आबध्नन्) विषयों में

नष्ट होने से रोक कर उसकी रक्षा करते हैं (तत्) उसको मैं आचार्य (ते) तुझ शिष्य के (आयुषे) आयु (वर्चसे) तेज (बलाय) बल और (शतशारदाय) सौ वर्ष तक के लम्बे (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन के लिए (बध्नामि) अपने अधीन व्रत रूप में नियत या व्यवस्थित करता हूँ।

(श्री पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार)

नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवाना मोजः प्रथमजं ह्येतत्। यो बिभर्त्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः।

अथर्व १ । ३५ । २ ॥

Not demons, not Picacas overcome him, for This is The first–born force of the gods, Whoso bears the gold of the descendauts of Daksa, he mekes for himself long life among the liuing. (Whitney)

(एनं) वीर्य की रक्षा करने हारे ब्रह्मचारी को (रक्षांसि) विघ्नकारी दुष्टभाव और ज्वरादि पीड़ाएं और (पिशाचाः) मांस भोजी पुरुष और दुर्बल करने हारे रोग कभी (न) नहीं सहन्ते दबा सकते, क्योंकि (एतत्) यह वीर्य रूप स्वर्ण, कान्ति-कारी मूल पदार्थ (देवानां) समस्त इन्द्रियों में और विद्वानों में (प्रथम जम्) सब से पूर्व और श्रेष्ठ (ओजः) ओज तेज रूप

है। (यः) जो ऊर्ध्व रेता पुरुष (दाक्षायणं) मुख्य प्राण में आश्रित इस (हिरण्यं) हितकारी रमणीय पदार्थ शुक्र को (बिभर्त्ति) यत्न पूर्वक धारण, रक्षा करता है (सः) वह (जीवेषु) जीवों में (आयुः) अपने आयु जीवन काल को (दीर्घं) बहुत लम्बा, अधिक (कृणुते) कर लेता है।

"ओजो हि शरीरधारको बलहेतुरष्टमो धातुविशेषः।"

(श्री पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार)

प्रथम मन्त्र से गुरु जी उपनयन समय बालक को **नारवन** बांध लौगाक्षि महाराज की सूत्र आज्ञा से ब्रह्मचारी की पदवी देते हैं।

"उपनयन प्रभृति ब्रह्मचारी स्यात्।"

उपनयन संस्कार से लेकर वेदाध्ययन समाप्ति तक ब्रह्मचारी अर्थात् यम नियम रूप ब्रह्मचर्य व्रत का धारण करने वाला होवे।

प्रथम मन्त्र मुक्त कण्ठ कह रहा है कि आचार्य (गुरु) शिष्य को आयु, वर्चस, बल, सौ वर्ष की दीर्घायु के लिये उसको **नारवन** बांधता है। इस प्रतिज्ञा से गुरु का उत्तरदायित्व भी अनन्त हो जाता है। अन्य स्थानों पर कहा है कि आचार्य

ब्रह्मचारी को अपने गर्भ में धारण कर रक्षा करता है। अर्थात् मातृवत् स्वयं कदम फूंक फूंक रखना उसका कर्त्तव्य हो जाता है। पर घड़ी भर का जुबानी जुबानी आचार्य बिचारा कर ही क्या सकता है। शिष्य को क्या और कैसे दे सकता है। इसीलिए वर्तमान गुरुकुल का प्रयत्न हो रहा है।

यह उपनयन कैसे होता है? ब्रह्मचारी आचार्य के पास इस प्रकार कैसे आकृष्ट होता है? कैसे दोनों में यह एकता स्थापित होती है? यह बातें कहने की नहीं हैं। क्योंकि यदि यह कहा जाय कि आचार्य शिष्य में **'नारवन'** रूप शक्ति सूत्र का बन्धन करते हुये शिष्य के अन्दर अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा प्रविष्ट होकर उसके चित्तादि को अपने से संयुक्त कर, मिलाकर बद्ध कर देता है। अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त में कहा है कि आचार्य ब्रह्मचारी के लिए द्यावा पृथिवी घढ़ता है और उन्हें ब्रह्मचारी अपनी तपस्या द्वारा रक्षित रखता है कि ऐसे उपनयन संस्कार के समय सचमुच दो ज्योतियां प्रत्यक्ष परस्पर बंध जाती हैं, दोनों अन्तरात्माओं का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, तो कौन आज इन बातों पर विश्वास करेगा? तो भी ये बातें सत्य हैं, और इसी लिए मैं कहता हूँ कि वेद का यह वचन केवल आलंकारिक नहीं, किन्तु वास्तविक तथ्य है। कहना होता है कि स्थूल जगत् आदि के क्रम से संसार को ब्रह्मचर्य के मार्ग पर आगे आगे ले जाने के लिए ही गुरु शिष्य मिलकर ज्ञान-घृत को संसार के अन्तरिक्ष में उत्पन्न करते हैं। इस ज्ञानोत्पत्ति के लिए आचार्य **वरुण अर्थात् पाप निवारक** होता है और

ब्रह्मचारी मित्र होकर ज्ञान से (गुरु से) स्नेह करने वाला होता है। प्रेम वा भक्ति वाला होता है। शिष्य अपने इसी एक गुण के कारण गुरु से सब कुछ ले लेता है, सब कुछ ग्रहण कर लेता है।

ब्रह्मचर्य और ब्रह्मचारी की महिमा अपार है। वाणी से उस का वर्णन करना सूर्य को दीपक से दिखाने के समान है। 'ब्रह्मचर्य' वह उग्र व्रत है जिस की साधना से लोग नर से नारायण हो सकते हैं। इस के पालन से अब तक अनेक लोग देव कोटि में गिने गये। तभी तो भगवान शङ्कर ने अपने मुखारविन्द से इस प्रकार कह कर आदेश किया है:—

नतपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम् ।
उर्ध्वरेता भवेद्यस्तु स देवो न तु मानुषः ॥

तप कुछ भी नहीं है। ब्रह्मचर्य ही उत्तम तप है। जिसने अपने वीर्य को अपने वश में कर लिया है, वह देव स्वरूप है— मनुष्य नहीं। कहीं कहीं तो ऐसा लिखा मिलता है कि:—

पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठम् ।

ब्रह्मचारी पहले जनमा है। ब्रह्मचारी ब्रह्म की पहली कृति है, उत्कृष्ट कृति है। पूर्व का अर्थ पूर्ण भी हो सकता है। मतलब यह है कि वृहत् परमेश्वर से ब्रह्मचारी सर्वोत्कृष्ट होकर, पहला

होकर पैदा होता है। अथवा बाप बेटे से पैदा होता है या बेटे के साथ उत्पन्न होता है, इस कहावत की तरह इसे समझा जा सकता है। उत्कृष्ट ब्रह्मचारी के द्वारा ही ब्रह्म का स्वरूप संसार के सन्मुख प्रगट होता है। ब्रह्मचारी ब्रह्मपन को सीधा ब्रह्म से प्राप्त कर के संसार को देता है। वेद ज्ञान को-ब्रह्मपन को संसार में फैलाता है। देखिये वेद का ब्रह्मचारी अपनी शक्ति की बात किस गौरव से कह रहा है :—

हन्ताहं पृथिवीमिमां निदधानीह वेह वा।

कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ऋ. १० । ११९ । ९

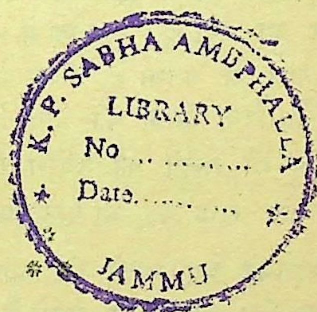
सोम पान से शक्तिशाली ब्रह्मचारी प्रसन्नता एवं मद से मस्त हुआ २ निश्चिन्त मन से यह विचार करता है कि मैं इन पार्थिव भावों या भोगों को यहां छोड़ता हूं, यहां छोड़ता हूँ और चाहूं तो सारी पृथिवी को यहां से वहां फेंक दूं-क्योंकि मैंने बहुविध वीय का संचय वा संरक्षण किया है।

वस्तुतः ब्रह्मचर्य में इतनी शक्ति या बल है कि वह क्रान्तिकारी युग परिवर्त्तन कर दिया करता है-पृथिवी भर का काया कल्प कर देता है-इतिहास इस की साक्षी है।

गुरु जी उस समय विद्यार्थी को ब्रह्मचर्य के सिद्धान्त बताते हैं। ईश्वर उपासना और प्राणायाम क्रिया सिखाते हैं। काश्मीरी सन्ध्या में पढ़े जाने वाले शिव संकल्प सूक्त के भावों से दैवी जीवन बनाने के उपदेश भी करते हैं।

गृह्य-सूत्र ग्रन्थों में विद्यार्थी के ब्रह्मचर्य जीवन को सफल बनाने और उसे कर्मयोग मार्ग पर आरूढ़ करने के लिए बहुमूल्य, अनुभूत शिक्षाएं भरी पड़ी हैं जो आज सैकड़ों हजारों व्यय कर नवीन पुस्तकों में अलभ्य हैं। अर्थात् विद्यार्थी की दिनचर्या कैसी हो, वह कब सोये, कब जागे, कैसे घूमे, फिरे, कैसे स्नान करे, क्या खाये, पीये, पहिने, कैसी सङ्गति में रहे, जिससे उसके सदाचार का निर्माण होता रहे। कहना होता है कि इस ज्ञान के अभाव में अनेक जाति रत्न पथभ्रष्ट होकर दो कौड़ी के होते देखे गये हैं। यह सत्य है कि भारतवर्ष ऐसी परिस्थितियों में से गुजरता रहा है कि समस्त पुरानी प्रथाओं का जीवित रखना सम्भव न था, पर फिर भी लाख लाख धन्यवाद है उस ब्राह्मण वर्ग का जिसने दारिद्र्य जीवन व्यतीत करते हुए श्रद्धा का आँचल न छोड़ा, जैसे तैसे प्राचीन संस्कृति के संस्कृत भाषा में नाटक करते रहे। उसी तपस्या का ही फल है कि गत हजारों वर्षों में देश के सर्व प्रकार पीड़ित रहने पर भी हमारा अमूल्य साहित्य बचा रहा, ईश कृपा से भारत का काया कल्प होरहा है, आशा ही नहीं, विश्वास होरहा है कि भारतीय संस्कृति के प्रेमी इस स्वर्ण अवसर से लाभ उठा कर मूर्छित ब्रह्मचर्य प्रणाली को सावधान कर दिखायेंगे। हर्ष और गौरव का विषय है कि वास्तविक **नारवन** बांधने वाले काश्मीरी ब्राह्मणों के नाम लेवा आज भी अपने पुनीत पैतृक संस्कार और विद्याबल से भारत में संख्यानुपात की दृष्टि से किसी से कम नहीं, अपितु

आगे ही आगे हैं। उन्हीं पूर्वज महात्माओं के आशीर्वाद का फल है कि आज भी हममें वास्तविक नारवन बांधे दीर्घजीवी शतजित्, शतधाता, भाई और नैष्ठिक ब्रह्मचारी भी विद्यमान हैं। ईश्वर हमको बल दें कि हम असली नारवन बांधना सीखें और हम सब अपनी सन्तान को सिखा सकें।



काश्मीरी विवाह पद्धति में ब्रह्मचर्य विधान

हमारी विवाह पद्धति में ब्रह्मचर्य के उपदेश स्थान स्थान पर भरे पड़े हैं। इनमें से यहां केवल तत्सम्बन्धी ५ मंत्रों का ही वर्णन किया जा रहा है। ऋग्वेद में ४७ मन्त्रों का एक सूक्त सोम सूर्या नाम से आया है, जिस के किसी किसी मन्त्र से कोई कोई वैवाहिक क्रिया की जाती है। अन्य गृह्यसूत्रों में तो केवल कुछेक ही मन्त्रों का प्रयोग मिलता है परन्तु हमारी पद्धति में समस्त सूक्त का भी पाठ किया जाता है।

पण्डितवर वेद मन्त्रों के आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तीन तीन अर्थ करते हैं। तदनुसार इस सूक्त के भी तीन अर्थ किये हैं—ज्योतिष, कृषि और गृहस्थ परक। विवाह समय में केवल वही अर्थ ग्राह्य है जो विवाह समयानुकूल हो। इस सूक्त में सूर्या- (कन्या) विवाह का आलङ्कारिक वर्णन है। ज्योतिष शास्त्र में सूर्या कहते हैं, सूर्य प्रभा को और कृषि शास्त्र में भूमि को। सूर्या मनुष्य की वीर्य शक्ति का नाम है। मनुष्य की जो शक्ति ज्ञान मार्ग में जाती है, उस को सूर्या कहते हैं और जो सन्तान मार्ग में जाती है उसे सोम कहा है। पुरुष और स्त्री में युवावस्था आने पर यह शक्ति सोम शक्ति की ओर जाने लगती है अर्थात् स्त्री पुरुष दोनों में सन्तान की कामना होने लगती है।

सोम मनुष्य का मस्तिष्क इस सूर्या के पिता का घर है तथा जननेन्द्रिय उस के पति को प्राप्त कराती है। युवावस्था में पूर्ण यौवन प्राप्त होने पर जब शक्ति मस्तिष्क से जननेन्द्रिय की ओर प्रयाण करती है उसको अलंकार से सूर्या विवाह का नाम दिया गया है। कहना होता है कि विवाह उसी वर कन्या का उचित है जिन के अपने शरीर में पहले सोम और सूर्या का विवाह हो चुका हो। इस प्रसंग में सृष्टि को दिखाने के लिये इस सूक्त का प्रारम्भ होता है, मानो भगवान् कहते हैं विवाह का वर्णन होने लगा है।

सूक्त में सगाई से लेकर दादा-दादी बनने तक गृहस्थ के सभी खुले और गुप्त सम्बन्धों पर ऐसे स्पष्ट सूत्र रूप निर्देश मिलते हैं कि जो आज की सैंकड़ों पुस्तकों में अलभ्य हैं।

इन पांच मन्त्रों (जिनका देवता या प्रतिपाद्य विषय सोम है) के अनेक अनुवाद दे दिये हैं—पाठक स्वयं पढ़ें और ज्ञान लाभ करें। यह अवश्य ध्यान रखलें कि इन में न तो बन औषध सोम की गुणावली कही है, न नक्षत्र मण्डल के सोम की शोभा-शक्ति का वर्णन है और न योगी के सोम का चमत्कार दिखाया है। यहां केवल विवाह परक सोम की महिमा गाई है, जिसे आयुर्वेद में शरीरस्थ धातु कहा है और जो सोमों का सार है, सृष्टि का आधार है, अंग्रेजी में जिसे (Cemen) तथा साधारण भाषा में वीर्य कहते हैं, जिसे काश्मीर देश के पूर्वजों ने प्रत्येक नर नारी को 'नारवन' नामी रस्म से पुनः पुनः प्रतिज्ञा पूर्वक सोम या हिरण्य बांध कर ब्रह्मचारी रहने का व्रत विधान किया है—

सोम शब्द षुञ् धातु से बना है जिस का व्यापक अर्थ सार निकालना है–सवन करना है–उपयोगी वस्तु तैयार करना है। वैदिक भाषा में उपयोगी श्रम को सवन कहते हैं। इस सवन के परिणाम का नाम सोम है। भगवान भी कहते हैं, मुझे श्रम करने वाले प्यारे हैं।

उत्तम सफल श्रम के लिये सोमों के सोम, सारों के सार वीर्य की अपेक्षा सदा ही रहती है।

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः।

ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधिश्रितः॥

ऋ० १०। ८५। १॥

Truth is the base that bears earth, by Surya are the heaven sustained.

By law the Adityas stand secure and Soma holds the place in heaven. (Griffith)

Earth is upheld by truth, heaven is upheld by the Sun; the Adityas are supported by sacrifice, Soma is supreme. (wilson)

सत्य से भूमि थमी है, सूर्य से आकाश, ऋत (अटल सत्य नियम, नापी हुई गति) से आदित्य ठहरे हैं, सोम का पद सब से ऊपर है।

मातृ पितृ मधुर उदार शक्तियां संसार की।
सत्य रूपा मात है पिता ज्ञान प्रकाश की॥
प्रेम
सोम शिर भौर राजे, ओज बली प्रभाव से।
शिष्ट जन आदित्य बनते, नियम रताचार से॥

अ० न० स०

(सत्येन) सत्य द्वारा (भूमिः) मातृशक्ति (उत्तभिता) थामी हुई है, (सूर्येण) दृष्टि शक्ति तथा मस्तिष्क शक्ति द्वारा (द्यौः) पितृशक्ति (उत्तभिता) थामी हुई है। (ऋतेन) नियमों द्वारा (आदित्याः) आदित्य ब्रह्मचारी (तिष्ठन्ति) अपने व्रत में स्थित होते हैं। जिनके कि (दिवि) शिर में या मस्तिष्क में (सोमः) वीर्य (अधिश्रितः) आश्रित होता है।

इस मन्त्र में मातृ शक्ति तथा पितृ शक्ति में भेद दर्शाकर अन्त में उच्चकोटि के ब्रह्मचर्य का वर्णन किया है। और साथ ही ब्रह्मचर्य के साधनों का भी वर्णन किया है। मन्त्र का सार यह है कि उच्च कोटि के आदित्य ब्रह्मचारी का तथा सत्य आदि धर्म-भावनाओं वाली और भूमि की तरह उत्पादन शक्ति वाली ब्रह्मचारिणी का परस्पर विवाह आदर्श विवाह है।

(वेदोपाध्याय श्री पं० विश्वनाथ विद्यालंकार)

इस ब्रह्माण्ड में द्यौ और पृथिवी का विवाह हुआ है, जिससे सोम उत्पन्न हुआ है। सोम को अपने मातापिता (भूमि-

द्यौः) से क्या सीखना है, सब से पहिले इसी का वर्णन करते हैः—

सब से पहली बात जो सोम को अपनी माता से सीखनी है वह सत्य परायणता है, इस लिए कहा है कि "सत्येनोत्तभिता भूमिः"। परन्तु भूमि माता सत्य परायण क्यों है ? क्योंकि सोम का पिता "द्यौः" देदीप्यमान है, वे किसके बल पर खड़े हैं ? "ऋतेनादित्या स्तिष्ठन्ति" अर्थात् आदित्य नापी हुई गति के सहारे खड़े हैं, और उनके इन दिव्य गुणों के कारण "सोम" खड़ा है। सोम को सोम इसलिये कहा है कि दोनों का सार है।

अब सोम की महिमा गाते हैं, क्यों कि विवाह में दुल्हे की महिमा गाई जाती है। कहां तक कहें "जहां भी इसकी चमक है वहां ही कार्य सिद्धि की दमक है, यह संसार के समस्त विद्वानों की गमक है"। इस विषय में वेद भगवान् ने और भी कहा हैः—

१. तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति। अथर्व ॥
२. देवा अनुसंयन्ति सर्वे। अथर्व ॥

सब देवता उस (ब्रह्मचारी) में अनुकूल हो जाते हैं। सब देवता उसके पीछे चलते हैं। मतलब यह है कि वह आदित्य ब्रह्मचारी इस जगत् में मानवता की इतनी पूर्ण कृति होता है कि वह देवताओं के लिए भी दर्शनीय होता है। सचमुच ऐसे

दिव्य जन्म होने के अवसर पर सम्पूर्ण दिव्य जगत् (देव जगत्) खुशी मानता है और अभिमुख होकर उसका स्वागत करता है यथा—

"तेषामेवैष स्वर्गलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं, येषु सत्यं प्रतिष्ठतम् ।"

(प्रश्नोपनिषद्)

उन्हीं लोगों को स्वर्ग मिलता है, जिन्होंने ब्रह्मचर्य जैसे तप का अनुष्ठान किया है। और जिनके हृदय में ब्रह्मचर्य रूपी सत्य विराजमान है।

मंत्र की आत्मा को समझने के लिए पाठक निम्न शब्दों को हृदयङ्गम कर लें। अंग्रेजी अनुवाद तो प्रसङ्गवश लिख दिया है। केवल उसी के पाठ से तो उलझन ही बढ़ेगी।

(क) सत्य और ऋत
(ख) सूर्य
(ग) भूमि और द्यौः
(घ) आदित्य
(ङ) सोम

(क) मन्त्र में ऋत और सत्य इन दो शब्दों का प्रयोग परस्पर भिन्न अर्थों में हुआ है। सत्य उन भौतिक तथा मानसिक सचाइयों का नाम है जिनका ज्ञान हमें आंख, कान तथा बुद्धि

आदि बाह्य और आन्तरिक करणों द्वारा होता है। इन्हें हम दूसरे शब्दों में वैज्ञानिक तथा दार्शनिक सचाइयां कह सकते हैं। ऋत वह आध्यात्मिक तत्व है जो इन भौतिक सचाइयों का मूल है। उसका प्रत्यक्ष योगी को योग-चक्षु द्वारा होता है। योग-दर्शन में सिद्ध पुरुष की बुद्धि को "ऋतम्भरा प्रज्ञा" कहा है।

(ख) सूर्य—प्रकाश, ताप और जीवन का दाता है; सूर्य मण्डल में उसका राज्य है। परन्तु विवाह प्रकरण में दुल्हा का तद्गुण सम्पन्न होना वेद को अभीष्ट है।

(ग) भूमि और द्यौः—माता पिता बनने वालों को विवाह मन्त्रों में अनेक बार यही उपयुक्त नाम दिया है।

(घ) आदित्य का अर्थ भी सूर्य है। शास्त्र कारों ने अड़तालीस वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य धारण करने वालों को आदित्य ब्रह्मचारी की संज्ञा दी है। वस्तुतः यही लोग समाज के सूर्य कहलाने के अधिकारी हैं उन्हीं के जीवन से मनुष्यों को समय समय पर सदाचार का प्रकाश और शक्ति मिलती रहती है।

(ङ) वेदों में अनेक प्रकार से हिरण्य, सोम, रेतस्, आदि वीर्य के पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग मिलते हैं।

हिरण्य सतोगुण का वाचक है। चांदी रजोगुण और— लोहा तमोगुण है। ये ही तीन पुर त्रिपुरासुर दैत्य ने स्वर्ग अन्तरिक्ष, और पृथिवी में बनाये थे।

ततोऽसुरा एषु लोकेषु पुरश्चक्रिरे ।
अयस्मयीमेवास्मिँल्लोके,
रजतामन्तरिक्षे हरिणीं दिवि ॥

शतपथ ३ । ४ । ४१६ ॥

अर्थात् असुरों ने इन लोकों में तीन पुर बनाये । अय-
स्मयी पुरी इस पृथिवी लोक में, रजतमयी पुरी अन्तरिक्ष में
और हिरण्मयी पुरी द्युलोक में । वैदिक परिभाषा में त्रैगुण्य के
ही यह तीन नाम हैं । इसके अनुसार हिरण्यमय लोक सर्वश्रेष्ठ
तृतीय स्थान द्युलोक है । यह द्युलोक ही अध्यात्म शास्त्र में
मानुषी मस्तिष्क है । मेरुदण्ड का भाग पृथिवी लोक है और
इन दोनों के बीच में अन्तरिक्ष लोक है । जिसमें "मेरुकन्द"
(Spinal bulb) और मस्तिष्क (Cerebrum) आदि
भाग सम्मिलित हैं । सोम की स्थिति भी स्वर्ग में ही कही गई
है । सोम कलश द्युलोक में प्रतिष्ठित है । वस्तुतः अध्यात्म
परिभाषा के अनुसार मस्तिष्क ही सोम से भरा हुआ कलश या
पूर्ण कुम्भ है । सोम ही अमृत है । अमृत भी द्युलोक में रहता
है जहां देवता उसकी रक्षा करते हैं । मस्तिष्क में भरा हुआ जो
रस है वही सोम है । समाधियुक्त, विचार, सत्य संकल्प, पवित्र
भाव, अमृत आशा, सतोमयी बुद्धि, ब्रह्मचारियों की मेधा—
इन सब का स्रोत या मूल कारण मस्तिष्क का पवित्र सोम ही
है । अर्वाचीन शरीर विज्ञान के अनुसार भी मस्तिष्क का रस
(Cerebral fluid) ही सब प्रकार के स्वास्थ्य और पवित्रता
का कारण है । उसी प्रकार की शुद्धि से मनुष्य में शक्ति और

प्राण प्रदीप्त रहते हैं। इस प्रकार के तत्व को ध्यान में रखकर ऋषियों ने मस्तिष्क को ही सोम का द्रोण-कलश माना है। आयुर्वेद शास्त्राचार्य महर्षि सुश्रुत-भी कह गये हैं:—

मनुष्य जो कुछ भोजन करता है वह पहिले पेट में जाकर जठराग्नि के द्वारा पचता है। खाद्य-पदार्थ के भली भांति पच जाने पर उसका रस बनता है। इसी रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से अन्त में वीर्य बनता है अर्थात् शरीर का सारतत्व वीर्य है। नास्तिक भी इसे शरीर की सर्वोपरि शक्ति समझ कर निरन्तर ईश्वररूप इसकी उपासना करते हैं।

वीर्य का भी सार होता है जिसे ओज नाम दिया गया है जो आदर्श ब्रह्मचारियों की मुख कान्ति में दिखाई देता है। इसी को सोम का द्युलोक में निवास कहा है।

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः॥

ऋ० १० । ८५ । २।

By Soma are the Adityas strong, by Soma mighty is the earth, this soma in the midst of all these Canstallations hath his place.

(Griffith)

By Soma the Adityas are strong, By Soma the Adityaearth is grert, Soma is stationed in the vicinity of these Nakhshatras.
(Wilson)

सोम से आदित्य बली है, सोम से पृथिवी मही (बड़ी) है, सोम इन नक्षत्रों के पास निवास करता है:—

सोम करे बलिष्ट नर सोम से महिम नारी।
सोम सोहे अङ्ग गुप्त अक्षत ब्रह्मचारी॥
अ. न. स.

(सोमेन) वीर्य द्वारा (आदित्याः) आदित्य ब्रह्मचारी (बलिनः) बलवान होते हैं, (सोमेन) वीर्य द्वारा (पृथिवी) स्त्री शक्ति भी (मही) पूजनीया होती है। (अथो) और (एषां नक्षत्राणाम्) इन अक्षत वीर्यों के (उपस्थे) उपस्थेन्द्रिय में (सोमः) वीर्य (आहितः) स्थित होता है।

आदित्य ब्रह्मचारी वीर्य द्वारा बलवान् होते हैं। ४८ वर्षों का ब्रह्मचारी आदित्य ब्रह्मचारी कहलाता है।

स्त्री शक्ति भी वीर्य द्वारा पूजनीया होती है। स्त्री का स्थान वह है जो कि पृथिवी का स्थान है। बंजर पृथिवी किसी काम की नहीं। बीज डालने पर जब पृथिवी हरी भरी हो जाती है तब उस की शोभा होती है। इसी प्रकार पुरुष के वीर्य रूपी बीज के कारण जब स्त्री शक्ति की गोदी हरी भरी होती है तब स्त्री शक्ति भी पूजा तथा मान का स्थान बन जाती है।

जिन का वीर्य ब्रह्मचर्याश्रम में क्षत नहीं होता रहा उन के ही उपस्थेन्द्रिय में गृहस्थ धर्म के समय वीर्य उपस्थित होता है और जिन का वीर्य क्षत होता रहा है वे निर्वीर्य हो जाते हैं, और गृहस्थ जीवन के उचित समय में उन की उपस्थेन्द्रिय में वीर्य की स्थिति नहीं दृष्टिगोचर होती। वे सन्तान-कर्म के लिये निःशक्त हो जाते हैं।

(वेदोपाध्याय श्री पं० विश्वनाथ विद्यालंकार)

महर्षि वायु का कहना है:-

बलेन वै पृथ्वी तिष्ठति, बलेनान्तरिक्षम् ।
वीर्यमेव बलम्, बलमेव वीर्यम् ॥

शक्ति से ही पृथ्वी ठहरती है और शक्ति से ही यह व्योम ठहरा हुआ है और शक्ति का नाम ही वीर्य है।

सोम की महिमा करती हुई भगवती वेद वाणी कह रही है कि देखो तो इस सारे ब्रह्माण्ड में सोम का ही राज्य है। संसार आदित्यों की महिमा गाता है तो इसी लिये कि उस आदित्य से ताप और प्रकाश के रूप में सोम की प्राप्ति होती है-लोग आदित्य को क्या जाने, यदि उन्हें आदित्य का सार भूत सोम प्राप्त न हो -। यह धरती भी सोम के कारण मही (बड़ी)

बनी है, इस से बनों में सब सोमों का परम सार, सारों का सार निवास करता है। तात्पर्य यह है कि अक्षत वीर्य व्यक्ति ही अमोघ वीर्य होते हैं, यही सोमधारी का चरम लक्ष्य है। यही शक्ति है जो जीनियस सन्तान देने वाली है।

सोमं मन्यते पपिवान्यत्सं पिषन्त्योषधम्।
सोमं यं ब्रह्मणो विदुर्नतस्या श्नाति कश्चन्॥

ऋ० १०। ८५। ३॥

One thinks, when they have brayed the plant, that he hath drunk the Soma's juice, of him whom Brahman truly know as Soma, no one ever tastes.

(Griffith)

He who has drunk thinks that the herb which men crush is the Soma, (but) that which the Brahman know to be Soma, of that no one partakes.

(wilson)

कोई बन बूटी कूट पीस कर, पीकर समझ बैठे कि मैंने सोम पान कर लिया, सो मिथ्या, ब्राह्मण के अतिरिक्त उसे कौन जाने और चखे।

पीस कूट औषध ली, कहते हम सोम पिया।
ब्राह्मण पिये सोम रस, क्या जाने ! भोग जिया ॥

(अ. न. स.)

(यत्) जब [ऋत्विक् लोग] (सोमं) सोम-ओषधि को (संपिषन्ति) मिल कर पीसते हैं [तो यजमान] (मन्यते) मानता है कि (सोमम्) सोम को (पपिवान्) मैंने पी लिया है, परन्तु (ब्रह्मणः) ब्रह्मवेत्ता अर्थात् वेद वेत्ता लोग (यम्) जिसे (सोमम्) सोम (विदुः) जानते हैं (पार्थिवः) स्त्री शक्ति का भोगी या स्त्री शक्ति में रत पुरुष (तस्य) उस का (न अश्नाति) अशन नहीं कर पाता।

इस मन्त्र में सोम पान का वर्णन है। मन्त्र में बताया गया है कि सोम ओषधि को कूट कर और उसका रस निकाल कर पीने से जो व्यक्ति यह समझ लेता है कि मैंने सोम पान कर लिया वह सोम-पान के अभिप्राय को ठीक नहीं समझ रहा होता, ब्रह्मवेत्ताओं अर्थात् वेदवेत्ताओं के मत में सोमपान और ही वस्तु है। स्त्री-भोगी पुरुष ब्रह्मवेत्ताओं में प्रसिद्ध सोमपान नहीं कर सकता। ब्रह्मवेत्ताओं का सोमपान है वीर्य को शरीर के भीतर लीन करना और उसके द्वारा मस्तिष्क शक्ति, शारीरिक शक्ति, तथा आत्मिक शक्ति को बढ़ाना।

(वेदोपाध्याय श्री पं० विश्वनाथ विद्यालङ्कार)

सोम क्या है ? पौराणिक भाष्यकारों की सम्मति में वह एक बूटी ही है। वास्तव में सोम एक बूटी का नाम तो है ही परन्तु प्रकरणों के देखने से पता लगता है कि इन मन्त्रों का सोम बूटी के सिवाय कुछ और भी अर्थ है। वेद स्वयं कहता है:-

पीने वाला उसको सोम समझता है जिसे लोग औषधि के रूप में पीसते हैं। जिसे ब्राह्मण सोम समझते हैं। साधारण मनुष्य उसके रहस्य को नहीं पाता।

जो कोई सोम रस को घोटते और पी जाते हैं, समझ लेते हैं कि हम ने 'सोम रस' पी लिया, वह प्राकृत लोग इस सूक्त के मरम को नहीं जान सकते, इस सूक्त में तो धातु रूप उस सोम का वर्णन है जो ब्राह्मण की विचाराग्नि का इंधन बन कर उसे ब्रह्मचारी बनाता है। और सत्पात्र में दान मिल जाने पर उसकी उत्कृष्टतर प्रतिभा उत्पन्न करके अजर अमर पथ का भागी बनाता है—इस सोम के तत्व को विद्वान् ब्राह्मण ही जानते हैं। प्रकृति पूजा से कभी भी ऊपर न उठने वाले शिश्नोदर-परायण मूढ़ जन भला क्या जाने मर्म इसका।

आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोमरक्षितः।
ग्राव्णामिच्छृण्वन्तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः॥

ऋ० १०। ८५। ४॥

soma secured by sheltering rules, guarded by hymns in Brihati thou shouldest listeniug to the stones, none tastes of thee who dwells on earth.

(Griffith)

Concealed by means of coverings protected by the Brihatas of Some thou

abidest listening to the grinding stones, no terestrial being partakes of thee.

(wilson)

ओ सोम! तू पत्थरों को घड़घड़ाहट सुनता,
परदों से ढका बृहत से सुरक्षित निवास करता है।
कोई पार्थिव जन तुझे चख नहीं सकता॥

तू पारद सा चञ्चल दुष्कर तेरा टिकना।
हां वेद विशारद हैं कहते चिर से इतना॥
प्राण-रोध बांध पुटन भिषज तुझे हैं रखते।
कहां! काम उग्र भोगी, तव रस पावन चखते॥

(अ. न. स.)

(बार्हतैः) वेदोक्त (आच्छद्विधानैः) आच्छादन की विधियों द्वारा (सोम) हे वीर्य! (गुपितः) तू अन्तर्लीन होता है, (रक्षितः) तथा रक्षा किया जाता है। (ग्राव्णाम्) वैदिक वाणियों का (इत्) ही (शृण्वन्) सुनता हुआ तू (तिष्ठसि) शरीर में ठहरता है, (पार्थिवः) स्त्री भोगी पुरुष या पार्थिव भोगों में लगा हुआ पुरुष (ते) तेरा (न अश्नाति) अशन अर्थात् पान नहीं कर पाता।

वेदोक्त आच्छादन विधियों अर्थात् बचाव के वैदिक साधनों और उपायों द्वारा वीर्य शरीर में लीन हो सकता है, और इस प्रकार रक्षित हो सकता है। शृङ्गारोत्पादक गीतों,

कथाओं तथा वार्तालापों से शरीर में वीर्य स्थित नहीं रहता। वैदिक धार्मिक वाणियों को सुनते रहने से ही वीर्य शरीर में स्थित होता है।

स्त्री-भोगी-पुरुष. अर्थात् पार्थिव भोगों में लिप्त पुरुष वीर्याशन,—जिसे कि ऊपर सोम पान कहा है—नहीं कर सकता।

(वेदोपाध्याय श्री पं० विश्वनाथ विद्यालंकार)

हे सोम! जिस प्रकार देवों द्वारा दिये जाने पर कृष्ण पक्ष में नक्षत्र मण्डल का सोम फिर नया हो जाता है, जिस प्रकार क्रमशः पर्दों का ह्रास होने पर शुक्ल पक्ष में सोम वल्ली के पत्ते फिर नये हो जाते हैं उसी प्रकार इस परम कारुणिक भगवान् की कृपा से दूध में मक्खन के समान सदा रुधिर में निवास करने वाला सोम प्रयोग में आने पर फिर वहीं से नया हो जाता है, परन्तु इस क्रिया में उसको एक मास लगता है अतः शरीर का सोम, नक्षत्र मण्डल का सोम और वन का सोम तीनों इस अंश में सम अर्थात् समान हैं और उनकी आकृति एक महीने में पूरे स्वरूप पर आ जाती है। जिस प्रकार वन के सोम की श्री के लिये विधाता ने पर्वत आदि अनेक स्वाभाविक बाढ़ें लगा दी हैं और जिस प्रकार सोम की खेती करने वाले को अनेक प्रकार के उपद्रवों से बचाने के लिये सोम की रक्षार्थ अनेक प्रकार के आच्छादन बनाने पड़ते हैं उसी प्रकार वीर्य रूपी सोम की रक्षा के लिये—कठोर जीवन, सरलवेष, ग्रामवास आदि अनेक विधान बनाने पड़ते हैं-और

तब उसका ग्रहण होता है, इस लिये सोम के पौदे को ब्रह्मचारी को आचार्य गुरु अपने गर्भ में धारण करता है—

यह 'आच्छद्विधान' गिलाफ है। जिस प्रकार उत्तम वस्तु का आहार करके सोम वल्लि परिपुष्ट होती है उसी प्रकार व्यायाम और प्राणायाम द्वारा वायु के ठीक संचार से तथा मानसिक शक्तियों की एक शिव संकल्प में निरन्तर गति होने से मानसिक रूप से वीर्य की रक्षा होती है। अतः कहा है कि वायु केवल एक आचार्य ही नहीं अपितु शरीर रक्षा के लिये दूसरा और भोजन आदि के प्रबन्ध के लिये तीसरा—इस प्रकार अनेक बड़े लोग मिल कर उस की रक्षा करते हैं इस लिये कहा है कि 'बार्हतैः' अर्थात् बार्हतों से सोम की रक्षा होती है।

जिस प्रकार सोम का रस निकालने के लिये 'ग्रावा' अर्थात् पत्थरों का प्रयोग किया जाता है, और वह भी मन्त्र पूर्वक—इसी प्रकार सुशिक्षित सोम का ग्रहण करने के लिये फिर भी बड़े उत्तम मन्त्र भूत ग्रावा अर्थात् स्तुति क्रियाओं की अपेक्षा होती है। तात्पर्य यह है कि तपोवन का सारभूत सोम, सच्चे ब्रह्मचारी का ही विवाह में प्रेरित होना है, जब तत्वज्ञानी निष्कपट गुणग्राही विद्वान् लोग उसकी स्तुति करते हैं और उसे पूर्ण विश्वास हो जाता है कि उस का यह अनेक विध पर्वतों से संचित वीर्य पात्र में दान किया जायगा।—

अपने वीर्य की महिमा जानने वाले उसे कूड़े के ढेर पर फेंकने के लिये तय्यार नहीं होते, और अपने वीय के विषय में सच्चा उत्तम सन्मान रखने वाले जितेन्द्रियं मनुष्य की ही ऐसी

निष्कपट मित्र की पूत स्तुति सुनने का सौभाग्य उन्हीं को होता है—इस लिये 'अश्णाम्' कहा है (जिस को ग्रिफिथ साहिब पत्थरों की आवाज़ बताते हैं) ऐसे ब्रह्मचारी की संगति में बैठने का सौभाग्य, उच्च भावनाओं में कभी न उड़ने वाले, धरती से कभी न उठने वाले मनुष्य को प्राप्त नहीं होता।

यत्त्वादेव प्रपिबन्ति तत आप्यायसे पुनः।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः॥

ऋ० १०।८५।५॥

when they begin to drink then there o God, thou swellest out again.

Vayu is Somas' guardian God. The Moon is that which shapes the year.

(Griffith)

when o God. they Quaff thee, then dost thou renew thyself again. Vayu is the guardian of Soma, the maker of years and month.

(wilson)

हे शुक्रदेव सोम ! जब देवता तेरा पान करते हैं तो तू बढ़ जाता है—वायु सोम का संरक्षक है-मास तथा वर्ष का बनाने वाला है।

अयि ! शुक्र देव सोम, तुम पालक प्राण समान,
जेता जेता योगी, पीते बनो बलवान् ।
तुम सुधारी वायु बलि, वायु धरे तव निवास,
भाव तदात्मपरस्पर, यथा वर्ष और मास ॥

(अ. न. स.)

(सोम) हे वीर्य ! (यत्) जब (त्वा) तुझे (प्रपिबन्ति) खूब पीते हैं (ततः) तदनन्तर (पुनः) और अधिक (आप्याय से) तू बढ़ता है । (वायुः) वायु (सोमस्य) वीर्य की (रक्षिता) रक्षा करने वाला तथा (आकृतिः) बनाने वाली शक्ति है, जैसे कि (मासः) मास (समानाम्) वर्षों का (आकृतिः) बनाने वाला है ।

वीर्य के पान अर्थात् वीर्य को रक्त में अन्तर्लय करने पर वीर्य और अधिक बढ़ता है ।

प्राणायाम और शुद्ध वायु वीर्य को उत्पन्न करती है और उत्पन्न हुए वीर्य की रक्षा करती है ।

शुद्ध वायु या शुद्ध वायु में किया प्राणायाम जो वीर्य को बनाता है इस में दृष्टान्त मास और वर्ष का दिया है । मास और वर्ष का परस्पर सम्बन्ध क्या है ? हम कह सकते हैं कि इन का परस्पर तादात्म्य सम्बन्ध है । मास ही मिल कर वर्ष बन जाता है । इस दृष्टान्त को देते हुए वेद ने यह दर्शाया है कि शुद्ध वायु या शुद्ध वायु में किये गये प्राणायाम और वीर्य में भी तादात्म्य का सा सम्बन्ध है । मानो वायु ही वीर्य रूप में परिणत हो

जाती है या प्राणायाम वीर्य शक्ति का निर्माण करने वाला है। इस तादात्म्य सम्बन्ध को दर्शा कर वेद ने वीर्य के निर्माण तथा वीर्य की रक्षा के सम्बन्ध में प्राणायाम के महत्व को दर्शाया है।

वायु और सोम के सम्बन्ध को यजुर्वेद ने और भी स्पष्ट कर दिया है। यथाः—

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अतिद्रुतः।

इन्द्रस्य युज्यः सखा।

वायोः पूतः पवित्रेण प्राङ् सोमो अतिद्रुतः।

इन्द्रस्य युज्यः सखा।

(य० १९ म० ३)

अर्थात् वायु की पवित्र करने वाली शक्ति द्वारा पवित्र हुआ सोम अर्थात वीर्य "पिछली उम्र" में बहुत शक्ति का सञ्चार करने वाला है। और इन्द्र अर्थात् शक्ति का योग्य सखा यह सोम है। इसी प्रकार यह सोम "पिछली उम्र" में भी बहुत शक्ति का सञ्चार करने वाला है। इस मन्त्र में "प्रत्यङ्" और "प्राङ्" शब्द जीवन के पिछले समय अर्थात् वृद्धत्व के, तथा जीवन के पहले समय अर्थात् युवावस्था के सूचक हैं। वायु से पवित्र हुआ सोम इन दोनों समयों में शरीर की शक्ति को बनाए रखता है।

इस प्रकार शुद्ध वायु के सेवन तथा शुद्ध वायु में किये गये प्राणायाम का सोम शक्ति के निर्माण वर्धन तथा रक्षण के साथ बहुत सम्बन्ध है।

(वेदोपाध्याय श्री पं० विश्वनाथ विद्यालंकार)

कोई अज्ञान वश अंग्रेजी अनुवादानुसार समझ सकता है कि सोम एक मादक द्रव्य है। आयुर्वेद की परिभाषा में बुद्धि को लुम्पित करने वाले को मादक द्रव्य कहते हैं, यदि सोम पान का प्रभाव भी यही होता तो उसे भी उपर्युक्त वैद्यक लक्षणानुसार एक मादक द्रव्य ही कहना चाहिए, परन्तु वेद में तो केवल यही नहीं कि सोम को मतिलुम्पक नहीं कहा गया किन्तु इस के विपरीत उसे मति-जनक, मति—प्रेरक कहा गया है।

संसार के नशे मैले, अपवित्र और आचार नाशक हैं। उन के खमीर में पाप है, वह हिंसा से पैदा होते हैं। पाप से उन की उपज है और पाप की ही प्रेरणा कर आचार भ्रष्ट करते हैं। कर्त्तव्य पथ से डिगाते हैं, उस पर चलाने में सहायता नहीं करते। विवाह परक वेदोक्त सोम एक पावन पाप नाशक रस है जो मद तो लाता है पर इस का पान करने वाला निर्भय. आदरणीय कर्मयोगी बन जगत् में बिचरता है। उदार और वीर बन जाता है। इस के विस्तृत गुण देखने हों तो सामवेद का पावमान पर्व का अध्ययन करें आप देखेंगे कि उस का मस्ताना भक्त इस को चैतन्य देव मान इस से बातें करता है।

इस के साथ फाग खेलता है, कहीं राजा मान कर नमस्कार करता है, कभी सखा समझ खिलाड़। कभी इसे सन्तों का धन मान कर संग्रह करता जाता है, कभी भक्ति आवेश में बुलाता है और कहता है आ! तेरा जन्म हुआ ही इस लिये है कि इन्द्रियों का राजा मैं अमृत पान करूं।

मन्त्र में एक विशेष बात यह है कि प्राण और वायु का ऐसा घनिष्ट सम्बन्ध है कि जैसे मास और वर्ष का तदात्म भाव।

मास से वर्ष बनते हैं और वर्ष के अन्तर्गत मास हैं। आयुर्वेद की पुस्तकें प्राण और वीर्य (धातु) के परस्पर सम्बन्ध से भरी पड़ी हैं। पश्चिमी चिकित्सा शास्त्रियों को भी यही अभिमत है कि प्राणायाम क्रिया के बिना वीर्य की (Deep breathing) स्थिरता सम्भव नहीं।



मस्ताना भक्त, सोम की नशीली धार में

इस तन में किस भांति समाऊँ ?

तड़प ! तेज हो, व्योम-विहारी बादल बन उड़ जाऊँ ।
लोक-लोक में घूम घूम कर बरसूं, सुख बरसाऊँ ॥

इस तन में किस भांति समाऊँ ?

बन तरङ्ग लिपटूं सागर से, लाड चाव सुख पाऊँ ।
उछलूं कूदूं मचलूं नाचूं, सीकर रास रचाऊँ ॥

इस तन में किस भांति समाऊँ ?

दिन-भर रवि-किरणों में रल-मिल चमकूं जग चमकाऊँ ।
रात पांति में तारा गण की बैठ ज्योति झलकाऊँ ॥

इस तन में किस भांति समाऊँ ?

पवन पंख पहरूँ पन्नी बन उड़-उड़ गगन गुञ्जाऊँ ।
प्रणव प्रीति का शिखर-शिखर पर शंकर नाद बजाऊं ॥

इस तन में किस भांति समाऊं ?

*
* *

हमारे प्रकाण्ड विद्वान् महामहोपाध्याय श्री पं० लक्ष्मीधर कल्ला

ने अपनी वैदिक-पद्धति के उपनयन संस्कार में ब्रह्मचर्य संबन्धी अनेक मन्त्रों का उल्लेख किया है जिन में से कुछ एक यह हैं:—

(१)

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्
कठ० १ । २ । १५ ॥

सारे वेद जिसका वर्णन करते हैं, समस्त तपों को जिसकी प्राप्ति के साधक कहते हैं, जिसकी इच्छा से मुमुक्षु जन ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं उस पद को मैं तुम से संक्षेप में कहता हूं। ॐ यही वह पद है।

(२)

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥

दोहा—अक्षर जाको कहत हैं, वीतराग जहँ जात।
ब्रह्मचर्य को जे करें, ता पद की यह बात॥
गीता ८। ११॥

(३)

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते॥

(अ०)

राजा ब्रह्मचर्य के तप द्वारा राष्ट्र की ठीक-ठीक रक्षा करता है, और आचार्य ब्रह्मचर्य से ही ब्रह्मचारी को चाहता है।

(४)

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।
अनड्वान्ब्रह्मचर्येण अश्वो घासं जिगीर्षति॥

(अ०)

कन्या ब्रह्मचर्य से ही जवान पति को प्राप्त करती है। बैल, घोड़ा ब्रह्मचर्य से ही घास खाना चाहता है, भोक्तृत्व प्राप्त करता है।

(५)

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।

(योगदर्शन)

ब्रह्मचर्य से सब प्रकार का बल प्राप्त होता है।

(६)

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।

(मुण्डक)

बिना बल प्राप्त किये मनुष्य की आत्मा को सत् की प्राप्ति दुर्लभ है।

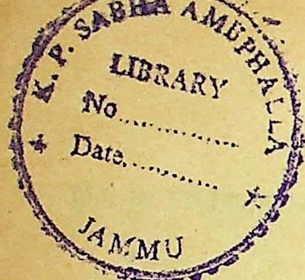
(७)

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥

(मुण्डक)

यह आत्मा सर्वदा सत्य, तप, सम्यग्ज्ञान और ब्रह्मचर्य के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। जिसे दोष-हीन योगिजन देखते हैं वह ज्योतिर्मय शुभ्र आत्मा शरीर के भीतर रहता है।





काश्मीर गौरव

संस्कृत साहित्य काश्मीर का ऋणी है, सभी विषयों में काश्मीरी विद्वानों की देन भरपूर है। काश्मीरी शैव दर्शन दार्शनिक संसार में अपना विशेष स्थान रखता है और अभी तक लुप्त ही था। काश्मीर सरकार ने उस के अनेक ग्रन्थ प्रकाशित कर उपकार किया है। यदि हम अपने पूर्वजों की दार्शनिक विद्वत्ता का हिन्दी भाषा में देखने के इच्छुक हों तो गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी उनकी सहायता कर सकता है।

गुरुकुल स्वर्ण जयन्ती के उपलक्ष में जो तीस लाख रुपये की अपील जनता से की गई है उस में पांच लाख श्रद्धानन्द प्रतिष्ठान (उपयोगी पुस्तकों को हिन्दी में लिखवाना अथवा अनुवाद करना) के लिए भी है।

यदि काश्मीरी भाई इस श्रद्धानन्द प्रतिष्ठान कोष में पर्याप्त धन जमा करादें तो यह कार्य कराया जा सकेगा।

पत्र द्वारा विशेष विचार किये कराये जा सकते हैं।

निवेदक—

अमरनाथ सप्रू



मनीआर्डर, चैक, हुण्डी आदि सब प्रकार का धन निम्न पते पर भेजिये—

मुख्याधिष्ठाता—
गुरुकुल कांगड़ी, विश्वविद्यालय।
डाकघर—गुरुकुल कांगड़ी।
(ज़िला सहारनपुर)
यू० पी०

नारवन

गुरुकुल कांगड़ी के स्वर्णजयन्ती यज्ञ का प्रसाद आपके हाथों में समर्पित है। कृपया आद्योपान्त अवलोकन कर आनन्द लाभ कीजिये और यज्ञार्थ अपनी भेंट भेज कर पुण्य यश प्राप्त कीजिये।

निवेदक—

अमरनाथ सप्रू।

मुद्रक—

श्री हरीवंश वेदालङ्कार।

गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।